Unnati International Journal of Multidisciplinary Scientific Research, U.I.J.M.S.R.
Peer Reviewed - Refereed Journal & Impact factor - 3.2, Open Access, Double Blind, Monthly Online Journal
ISSN : 2581-8872, Vol. : 1, No. : 10, Nov. - 2019
2019

भारत में कृषि विपणन की वर्तमान अवस्था

डॉ. पंकज नेमा
एम कॉम, पी.एच.डी., असिस्टेंट प्रोफेसर, कॉमर्स, महात्मा गांधी पोस्ट ग्रेजूएट कॉलेज, करेली

किसान अपने अतिरिक्त उत्पादन का कई प्रकार से विक्रय कर सकता है। सबसे पहला और सामान्य तरीका तो यह है कि किसान फालतू फसल ग्राम के साहूकार या महाजन एवं व्यापारी को बेचता है। व्यापारी स्वयं भी कृषि–उत्पादन क्रय कर सकता है या किसी बड़ी वाणिज्यिक फर्म या किसी बड़े व्यापारी का अभिकर्ता बन कर भी फसल खरीद सकता है। यह अनुमान लगाया गया है कि पंजाब में गेहूं का 60 प्रतिशत, तिलहनों का 70 प्रतिशत और रूई का 35 प्रतिशत उत्पादन ग्राम में ही बेचा जाता है।

भारतीय किसानों में प्रचलित विक्रय की दूसरी प्रणाली के अनुसार किसान अपने उत्पादन को साप्ताहिक या अर्ध–साप्ताहिक ग्राम–बाजारों में, जिन्हें 'हाट' कहते है, बेच देते हैं। इनके अतिरिक्त, धार्मिक उत्सवों के संबंध में महत्वपूर्ण ग्रामों या कस्बों में मेले लगाए जाते है। किसान इन मेलों में अपना उत्पादन और पशु लाते है और उन्हें वहां बेचते है।

कृषि–विपणन की तीसरी प्रणाली में छोटे तथा बड़ें कस्बों में, मंडियों में क्रय–विक्रय किया जाता है। मंडियां उत्पादन–केन्द्रों से कई मील दूर स्थित भी हो सकती है और परिणामतः किसान को अपनी उपज मंडी तक ले जाने के लिए विशेष प्रयास करना पड़ता है। मंडियों में दलालों द्वारा किसान अपनी फसल को आढ़तियों को बेचते है। ये आढ़तिए, जो थोक–व्यापारी होते हैं, अपनी फसल या तो फुटकर विक्रेताओं को या आटे की मिलों या विधायन–इकाइयों को बेच देते है। उदाहरणतया, रूई के थोक विक्रेता इसे कपड़ा कारखानों को बेच देते हैं किन्तु खाद्यान्नों को आटे की मिलों या फुटकर विक्रेताओं को बेचा जाता है।

सहकारी विपणन की प्रगति :– भारत सरकार और रिजर्व बैंक के सक्रिय प्रोत्साहन के आधीन सहकारी विपणन ने महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश और बिहार में भारी प्रगति की है। महाराष्ट्र और गुजरात की रूई विक्रय समितियां अपने सदस्यों के लिए रूई की धुनाई करती है और इस प्रकार उन्हें काफी लाभ पहुंचाती है। उत्तर प्रदेश और बिहार की गन्ना विपणन समितियां अपने सदस्यों के हितों की, चीनी कारखानों के विरूद्ध, रक्षा करती है और गन्ने की गुणवत्ता को उन्नत करने में सहायता करती है। वे धनराशि अग्रिम के रूप में देती हैं और ग्रामों में कल्याणकारी क्रियाएं भी चलाती है। इसके अतिरिक्त वे कारखानों को गन्ना उपलब्ध कराती हैं और बीजों तथा उर्वरकों के क्रय के लिए वित्त उपलब्ध कराती हैं। महाराष्ट्र में ऐसी समितियां है जो तम्बाकू, फलों, सब्जियों आदि के विक्रय में विशेषज्ञता प्राप्त कर चुकी हैं। वे सदस्यों को उपज कमीशन के आधार पर बेचती हैं, परंतु कुछ परिस्थितियों में उपज का विधायन करती हैं और खादों और शुद्ध बीजों का सम्भरण करती हैं। अखिल भारतीय ग्राम साख सर्वेक्षण समिति की सिफारिशों के आधीन सहकारी विपणन और सहकारी उधार के बीच संबंध स्थापित करने का प्रयास किया गया। चौथी योजना की पूर्वसंध्या पर लगभग 66 प्रतिशत कृषि उधार समितियों को विपणन समितियों से सम्बद्ध किया गया। शेष 34 प्रतिशत उधार समितियों को भी बाद में विपणन समितियों के साथ जोड़ दिया गया।

सहकारी विपणन तंत्र में 6,000 से अधिक प्राथमिक विपणन समितियां कार्य कर रही थीं जिनमें से 3,500 विशेष वस्तु विपणन समितियां थी। जिला स्तर पर 160 केन्द्रीय विपणन समितियां थी। राज्यीय स्तर पर 29 शीर्ष समितियां और 25 विपणन फडरेशन थे। अखिल भारतीय स्तर पर राष्ट्रीय कृषि–सहकारी विपणन संघ कार्य कर रहा है। सहकारी विपणन के अतिरिक्त, सहकारी विधायन भी काफी प्रगति कर रहा है। सहकारी विपणन समितियों ने 1972–73 में 920 करोड़ रूपये की कृषि उपज का क्रय–विक्रय किया परंतु इसकी मात्रा बढ़कर 1995–96 में 11,500 करोड़ रूपए हो गई। पंजाब, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश और गुजरात मिलकर सहकारी समितियों द्वारा क्रय–विक्रय की गई कुल उपज के 75 प्रतिशत के लिए जिम्मेदार है। सहकारी समितियों को रूई और पटसन की वसूली में रूई एवं पटसन निगमों की ओर से अधिक कार्यभाग दिया जा रहा है। सहकारी समितियों ने उर्वरकों और अन्य कृषि आदानों, उन्नत बीजों, कृषि मशीनरी एवं कीटनाशकों के वितरण में महत्वपूर्ण वृद्धि रिकार्ड की है।

सहकारी विधायन :– आज देश में 2,500 कृषि सहकारी विधायन समितियां सहकारी क्षेत्र में कार्य कर रही है। इनकी संख्या 1962–63 में केवल 326 थी। चीनी उद्योग में सहकारी समितियां भारी कार्यभाग अदा करती हैं और चीनी के राष्ट्रीय उत्पादन के 58 प्रतिशत के लिए जिम्मेदार हैं।

देश में अब 220 सहकारी चीनी कारखाने हैं जिन्होंने चीनी के उत्पादन में भारी कुशलता का परिचय दिया है। ये कारखाने चीनी प्राप्ति, क्षमता उपयोग और उप–उत्पादों के प्रयोग में सक्षम है। इन कारखानों ने शराब के कारखानों कागज की मिलों और अल्कोहल पर आधारित रासायनिक इकाइयों की सीापना की है। इन कारखानों ने अपने आस–पास के इलाकों में ग्राम समाज के लिए समाजार्थिक सेवाएं अर्थात् सिंचाई सुविधाएं, डेरी एवं मुर्गी पालन क्रियाएं कृषि विस्तार एवं शिक्षा संस्थाएं और हस्पताल स्थापित किए हैं। वे औद्योगीकृत समाज के लिए त्वरक का कार्य भी करते है जिससे प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप में ग्रामीण जनता के लिए रोजगार के अवसर उपलब्ध कराए जा सकें।

सहकारी संग्रहण :– कृषि सहकारी समितियों को अपने विभिन्न कार्यो के लिए गोदामों की आवश्यकता पड़ती है। सातवीं योजना में सहकारी क्षेत्र में 20 लाख टन की अतिरिक्त संग्रहण क्षमता कायम करने का लक्ष्य रखा गया किन्तु पहले तीन वर्षो में ही लक्ष्य से अधिक अर्थात् 24 लाख टन की अतिरिक्त संग्रहण क्षमता कायम की गई। देश में कार्य कर रही 46,000 प्राथमिक सहकारी समीतियों के पास अपने गोदाम है। इस उपलब्धि का श्रेय विश्व बैंक तथा योरोपीय आर्थिक समुदाय द्वारा सहायता प्रदान की गई कई सहकारी संग्रहण परियोजनाओं के कार्यान्वयन को दिया जा सकता है। इस संबंध में सहकारी समितियों द्वारा शीत गोदाम विशेषकर आलुओं के लिए का उल्लेख करना अनुचित न होगा। मार्च 1988 तक 6 लाख टन क्षमता के 216 शीत गोदाम कायम किए गए।

निष्कर्ष यह कि (NAFED) ने नाशवान वस्तुओं अर्थात् प्याज और आलुओं की बाजार कीमतों को मुख्य उत्पादन क्षेत्रों में स्थिर रखने में लाभदायक योगदान दिया है। इसके लिए या तो यह स्वयं बाजार में महत्वपूर्ण रूप में हस्तक्षेप करता है या कभी–कभी सरकार की एजेन्सी के रूप में कार्य करता है। NAFED फार्म उत्पादन के अन्तःराज्यीय व्यापार एवं निर्यात को प्रोन्नत करता है। यह प्याज, दालों लाल मिर्च, अदरक, लहसुन और बड़ी इलायची जैसी वस्तुओं का भिन्न–भिन्न देशों को निर्यात करता है। दालों, मूंगफली, प्याज और आलुओं का निर्यात NAFED द्वारा ही किया जाता है। यह आधिक्य वाले क्षेत्रों से अभाव–ग्रस्त क्षेत्रों को अनिवार्य वस्तुओं को भेजता है ताकि उपभोग वस्तुओं की पूर्ति बढ़ाई जा सके। 1994–95 के दौरान 720 करोड़ रूपये की वस्तुओं का NAFED द्वारा इस उद्देश्य के लिए व्यापार किया गया। 1997–98 में इसके बढ़ कर 810 करोड़ रूपये हो जाने की प्रत्याशा है। उत्पादकों एवं उपभोक्ताओं दोनों की दृष्टि से NAFED बाजार क्रियाओं और बाजार कीमतों पर सद्प्रभाव डालता रहा है।

राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम कृषि उपज एवं अन्य अनुसूचित वस्तुओं के उत्पादन, विधायन, संग्रहण एवं विपणन का कार्य सहकारी समितियों द्वारा कराता था। इस निगम ने अपने कार्यक्षेत्र का विस्तार करके इसमें सहकारी डेरी, मुर्गीपालन, मत्स्यपालन और छोटी वन उपज को शामिल कर लिया है जो कि मूलतः समाज के पश्चात् इस निगम ने मार्च 1996 तक 2,800 करोड़ रूपये की वित्तीय सहायता उपलब्ध कराई। यह निगम राष्ट्रीय स्तर पर सहकारी विपणन, भण्डार एवं विधायन के लिए वित्तीय एवं प्रोन्नति की प्रधान संस्था है। यह इन क्रियाओं के लिए बड़े विस्तृत स्तर पर सहायता देता है।

सरकार और कृषि विपणन

सरकार द्वारा विपणन – सर्वेक्षणों के आधार पर कृषि वस्तुओं के क्रय–विक्रय में सुधार लाने के लिए किए गए उपाय निम्नलिखित हैं –

1. सरकार ने कृषि वस्तुओं के वर्ग–विभाजन तथा मानकीकरण के लिए बहुत सा कार्य किया है। कृषि उपज (वर्ग विभाजन एवं विपणन) अधिनियम के आधीन घी, आटा, अण्डे आदि वस्तुओं के लिए वर्ग विभाजन केन्द्र स्थापित किए है। कृषि विपणन विभाग द्वारा वर्ग विभाजित वस्तुओं पर 'AGMARK' की मुहर लगा दी जाती है। इस प्रकार इन वस्तुओं के बाजार का विस्तार होता है और उनके लिए अच्छी कीमत प्राप्त हो सकती है। नागपुर में केन्द्रीय कोटि नियन्त्रण प्रयोगशाला कायम की गई है। इसी प्रकार देश के विभिन्न भागों में आठ प्रादेशिक प्रयोगशालाएं कायम की गई हैं। इन सब प्रयोगशालाओं का उद्देश्य कृषि–वस्तुओं की किस्म एवं शुद्धता का परीक्षण करना है। कोटि नियन्त्रण को अधिक मजबूत करने के लिए निरीक्षण को बढ़ाया जा रहा है और वर्ग–विभाजन में

उन्नति की जा रही है।

2. कृषि–विपणन को सुधारने का एक महत्वपूर्ण उपाय देश भर में विनियमित मंडियां कायम करना है। अब देश में 7,060 विनियमित मंडियां कार्य कर रही है। विनियमित मंडियों की स्थापना के फलस्वरूप मंडियों में दोषपूर्ण व्यवहारों को दूर किया जा रहा है। यह अनुमान है कि कुल कृषि उपज के लगभग 70 प्रतिशत का क्रय–विक्रय इन्हीं मंडियों में होता हैं

इस संबंध में सरकार द्वारा देश भर में माप और तोल के बटों का मानकीकरण विशेषकर उल्लेखनीय है। सरकार ने देश में प्रचलित विभिन्न प्रकार के माप और तौल के बट्टों को समाप्त कर, इनके स्थान पर मीट्रिक प्रणाली अपनाई है। इस प्रकार किसानों के साथ बटां के आधार पर होने वाला छल–कपट समाप्त हो गया है।

3. स्रकार ने कस्बों तथा ग्रामों में भण्डागार सुविधाओं को भी उन्नत करने के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया है। 1957 में कृषि उपजों में संग्रहण तथा गोदामों एवं भण्डारणों के परिचालन के लिए केन्द्रीय भाण्डागार निगम की सीापना की गयी। इसी उद्देश्य से विभिन्न राज्यों में राज्यीय भाण्डागार निगम स्थापित किए गए। आज भारतीय खाद्य निगम देश के विभिन्न भागों में गोदामों के एक जाल का निर्माण कर रहा है।

4. किसानों में कृषि संबंधी सूचना के प्रसारण के लिए सरकार रेडियो तथा टेलीविजन का प्रयोग भी करती रही है। रेडियों तथा दूरदर्शन के प्रसारण में मुख्य वस्तुओं के दैनिक मूल्यों, स्टॉक तथा बाजार की गतिविधियों संबंधी सूचना दी जाती है। बहुत से किसान इन प्रसारणों को सुनकर लाभ उठाते है।

5. **सहकारी विपणन समितियों का संगठन** – भारत सरकार ने बहु–उद्देश्य सहकारी समितियों के संगठन को प्रोत्साहन देने के लिए सक्रिय प्रोत्साहन दिया है। और इस कार्य में विशेष बल उधार एवं विपणन पर ही रखा गया। प्राथमिक विपणन समितियों को केन्द्रीय विपणन समितियां और राज्यीय स्तर पर शिखर विपणन समितियां कायम करने के लिए प्रोत्साहन दिया गया। इसी प्रकार राष्ट्रीय कृषि सहकारी विपणन संघ (NAFED)भी कायम किया गया। सरकार ने सहकारी विपणन समितियों और संघों को स्टेट बैंक ऑफ इंडिया और अन्य राष्ट्रीयकृत बैंकों के माध्यम से अधिक वित्तीय संसाधन उपलब्ध कराए।

इस संबंध में, राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम (NCDC) का उल्लेख करना उचित होगा जिसकी स्थापना भारत सरकार द्वारा 1965 में की गयी ताकि वह सहकारी समितियों द्वारा कृषि उपज के उत्पादन, संसाधन, भाण्डागार और विपणन के प्रोग्रामों का आयोजन कर सके और उन्हें प्रोत्साहन दे सके।

6. **विशेष बोर्डो की स्थापना** – भारत सरकार ने कुछ विशेष वस्तुओं जैसे चावल, दालें, पटसन, मोटे अनाज, रूई, तम्बाकू, तिलहन, गन्ना, सुपारी आदि के लिए बहुत सी विकास परिषदें भी कायम की हैं। भारत सरकार ने बहुत सी निर्यात प्रोन्नति परिषद भी कायम की हैं जैसे काजू निर्यात प्रोन्नति परिषद और कृषि एवं संसाधित खाद्य निर्यात विकास प्राधिकरण।

7. **कृषि वस्तुओं के निर्यात को बढ़ावा** – सरकारी सहायता के अधीन हाल ही के वर्षो में कृषि निर्यात के बढ़ने की प्रवृत्ति अभिव्यक्त हुई है। उदाहरणार्थ, कृषि–वस्तुओं का निर्यात जो 1992–93 में 7,880 करोड़ रूपये था बढ़कर 2003–04 में 34,000 करोड़ रूपये हो गया। भारत के कृषि–निर्यात में दालें, चावल, गेहूं, तम्बाकू, चीनी, मुर्गी एवं दुग्धशाला से संबंधित वस्तुएं, गर्म मसाले, काजू, तिलहन, मूंगफली, फल एवं सब्जियां शामिल है। भारत के कुल निर्यात में कृषि–निर्यात का भाग के बीच 12–15 प्रतिशत रहा।

भारत सरकार की विदेश व्यापार नीति (2004–09) में कृषि–निर्यात पर बल दिया गया है और एक नयी योजना 'विशेष कृषि–उत्पाद योजना' चालू की गयी है ताकि फलों, सब्जियों, फूलों और छोटे वन–उत्पाद की निर्यात प्रोन्नत हो सके। सरकार ने राज्यों के लिए कृषि–निर्यात क्षेत्रों की स्थापना के लिए राशि भी निर्धारित कर दी है।

8. **कृषि–विपणन सुधार** :– सरकार ने कृषि निर्यात सुधारों के लिए एक अंतः मंत्रीय कार्यदल स्थापित किया ताकि कृषि विपणन को अधिक सबल और प्रतिस्पर्द्धी बनाने के लिए उपायों का प्रस्ताव करे। इस कार्यदल ने अपनी रिपोर्ट जून 2002 में पेश कर निम्नलिखित सुझाव दिए :–

1. प्रत्यक्ष विपणन की अनुबंध खेती को प्रोन्नत करना।
2. निजी एवं सहकार क्षेत्रों में कृषि बाजारों का विकास करना।

3. सभी कृषि बाजारों में भावी व्यापार का विस्तार करना।
4. परक्रायम भाण्डागार रसीद प्रणाली को चालू करना और
5. किसानों को बाजार संबंधी विस्तार सेवाएं उपलब्ध कराने के लिए सूचना तकनालाजी का प्रयोग।

भारत सरकार ने कृषि विपणन के लिए एक मॉडल कानून तैयार और प्रचारित किया है जो अन्य मदों के साथ प्रत्यक्ष खरीद केन्द्र उपभोक्ताओं को प्रत्यक्ष विक्रय के लिए बाजार कीमत–निर्धारण प्रणाली में पूर्ण पारदर्शिता, किसानों को उसी दिन भुगतान, वर्तमान बाजारों के सार्वजनिक–निजी स्वामित्व के लिए व्यावसायिक प्रबंध आदि मुहैया कराएगा। 2004 में, राज्यीय सरकारों ने इस मॉडल कानून को लागू करना स्वीकार कर लिया है। (ताकि थोक एवं खुदरा व्यापारियों के रूप में बिचौलियों को समाप्त किया जा सके)।

9. भावी व्यापार – आर्थिक सुधारों के अंग के रूप में, सरकार ने गुड़, आलू, अरण्ड के बीज, काली मिर्च, हल्दी और पटसन में भावी व्यापार की इजाजत दे दी। 1997–98 में सरकार ने भावी व्यापार का विस्तार कर इसमें काफी, रूई, अरण्ड तेल और पटसन की वस्तुओं को और बढ़ा दिया। 1998–99 के बजट में सरकार ने तिलहनों, खल एवं खाद्य तेलों में भावी व्यापार की घोषणा की। भारत सरकार ने अरण्ड–तेल और काली मिर्च में अन्तर्राष्ट्रीय भावी व्यापार की इजाजत दे दी है।

2003–04 में, भारत सरकार ने सभी वस्तुओं में भावी व्यापार को चालू करने के लिए एक मुख्य कदम उठाकर राष्ट्रीय–स्तरीय वस्तु बाजार स्थापित किए हैं। इन बाजारों पर क्रय–विक्रय की जाने वाली मुख्य वस्तुएं है : गेहूं, कपास (रूई), सोया तेल, पटसन, रबड़, काली मिर्च, हल्दी आदि। इन वस्तु बाजारों ने बहुत सी नव क्रियाएं चालू की हैं जिनसे देश में कृषि–विपणन की कुशलता बढ़ेगी। मूल रूप में, भौतिक वसूली के लिए भाण्डागार रसीद रूकावट है – इस प्रकार भौतिक वस्तुओं के व्यापार में अन्तर्निहित कठोरता समाप्त कर दी जाएगी। कीमत और गुणवत्ता दोनों के विरूद्ध संरक्षण का इसमें न्यायोचित मिश्रण है। राष्ट्रीय वस्तु एवं उप–वस्तु बाजार, मुंबई ने गुजरात, मध्यप्रदेश और आंध्रप्रदेश में एक प्रायोगिक प्रोजेक्ट चालू किया है ताकि किसान इस अवधारणा को समझें और उन लाभों को महसूस करें जो फसल–कटाई से पूर्व किसी व्यापार बाजार में कीमतों में उच्चावचन के जोखिम से बचाव के लिए प्राप्त हो सकते हैं।

किसानों को उपलब्ध कृषि–विपणन संबंधी मूल सुविधाएं :– कृषि–उत्पादन के विक्रय में अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए किसान को कुछ मूल सुविधाओं की उपलब्धि आवश्यक है –

(क) उसके पास अपनी वस्तुओं को रखने के लिए गोदामों की उचित व्यवस्था होनी चाहिए।

(ख) उसमें कुछ समय के लिए रूक सकने की क्षमता होनी चाहिए जबकि वह उस समय की प्रतीक्षा कर सके जबकि वह अपने स्टॉक को अच्छे मूल्य पर बेच सके। यदि वह फसल कटने के बाद अपनी उपज को बेचेगा तो उसे कम कीमत ही प्राप्त होगी।

(ग) उसके पास सस्ती परिवहन सुविधाएं होनी चाहिएं ताकि वह फसल को ग्राम में ही साहूकार या महाजन–व्यापारी को न बेचकर मंडी में ले ला सके।

(घ) उसे बाजार में विद्यमान परिस्थितियों तथा प्रचलित मूल्यों के बारे में पूर्ण सूचना होनी चाहिए, नहीं तो उसे धोखा हो सकता है। व्यवस्थित और विनियमित मंडियों का विकास होना चाहिए जहां किसान को दलाल और आढ़तियें लूट न सकें।

(ड.) बिचौलियों की संख्या जितनी कम से कम हो सके, कर देनी चाहिए। इससे किसानों को अपनी फसल के बदले उचित मूल्य प्राप्त होगा।

विनियमित मंडियॉं :– विनियमित मंडियों का उद्देश्य किसान को आढ़तियों और दलालों के दोषपूर्ण व्यवहारों से मुक्त कराना है। इनके मुख्य लक्ष्य अस्वस्थ्य बाजार व्यवहारों को दूर करना, विपणन–दातव्य कम करना और किसान को उचित मूल्य का विश्वास दिलाना है। इन उद्देश्यों को दृष्टि में रखकर सभी राज्यीय सरकारों ने विनियमित मंडियों संबंधी कानून बनाए है। 1951 में भारत में 200 से अधिक विनियमित मंडिया थी। द्वितीय योजना के अंत तक (अर्थात् 1961 में) 1,000 विनियमित मंडियां कायम हो चुकी थी। मार्च 1998 के अंत तक देश में 7,060 कृषि–मंडियां विनियमित की गयी।

विनियमित मंडियों के लक्षण :– कानून के आधीन एक विनियमित मंडी किसी विशिष्ट वस्तु या वस्तु समूह के लिए चालू की जाती है। ऐसी मंडी के प्रबन्ध के

लिए एक मंडी समिति बनाई जाती है जिसमें राज्यीय सरकार, सीानीय संस्थाओं (अर्थात् जिला बोर्ड), व्यापारियों कमीशन एजेण्टों या दलालों और स्वयं किसानों के प्रतिनिधि होते है। दूसरे शब्दों में, मंडी समिति में सभी प्रकार के हित सम्मिलित होते है। इस समिति को एक निश्चित अवधि के लिए सरकार द्वारा नियुक्त किया जाता है और इसे मंडी के प्रबन्ध का कार्य सौंप दिया जाता है।

मंडी समिति द्वारा मंडी में वसूल किए जाने वाले कमीशन भी निश्चित किए जाते है। मंडी समिति इस बात का भी ध्यान रखती है कि कोई दलाल न तो क्रेता की ओर से कार्य करे और न विक्रेता की ओर से। इस प्रकार किसान को दी जाने वाली कीमत में से अनाधिकृत कटौतियां समाप्त हो जाती हैं। साथ ही माप और तौल के सही बांटों का प्रयोग भी अनिवार्य कर दिया जाता है। यह समिति सभी प्रकार की शिकायतें सुनती है और उनके निर्णय भी करती है। झगड़ें की हालत में यह मध्यस्थ निर्णय भी करती है।

विनियमित मंडियों की प्रणाली को दलालो और कमीशन एजेण्टों की दोषपूर्ण प्रथाओं को हटाने और नए बाजार–व्यवहारों की स्थापना के लिए बहुत लाभदायक समझाा जाता है। इसके द्वारा किसानों को अपनी उपज के लिए उचित कीमतें प्राप्त करने के लिए सहायता मिलती है। देश में मानकीकृत माप और तौल के बांटों का प्रयोग करने में भी इनसे सहायता मिली है। अतः सरकार ने देश में विद्यमान सभी मंडियों को विनियमित मंडियों में बदल देने की नीति अपनाई है। विनियमित मंडियों का विकास विशेष रूप में ऐसे क्षेत्रों में होना चाहिए जहां रूई, पटसन तम्बाकू जैसे वाणिज्य फसलें और महत्वपूर्ण अपारम्परिक फसलें उत्पन्न की जाती हैं और साप्ताहिक बाजारों या हाटों में बेची जाती है। सरकारी विपणन एवं वितरण और बैंक–प्रणाली को विनियमित मंडियों से जोड़ना होगा। इन मंडियों का कार्यक्षेत्र सभी मुख्य फसलों तक फैलाना होगा। पशुधन, मछलियों, फलों तथा सब्जियों के लिए अलग मंडियां कायम करनी होगी।

विनियमित मंडियों के उद्देश्य है (क) कृषि–वस्तुओं के उत्पादकों को लाभपूर्ण कीमतें प्राप्त हो सकें। (ख) उत्पादक और उपभोक्ता के बीच कीमत–प्रसार को कम किया जा सके। (ग) व्यापारियों और कमीशन एजेण्टों के अकार्यात्मक लाभ कम किए जा सकें। इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए सरकार विनियमित विपणन प्रणाली का व्यापक एवं तीव्र विकास करना चाहेगी।

सहकारी विपणन :– 1954 से पूर्व, सहकारी साख समितियों की अपेक्षा सहकारी विपणन समितियां पृथक् रूप में स्थापित की गी किन्तु 1954 तक, किसानों को उधार देने के लिए और अतिरिक्त उपज के क्रय–विक्रय के लिए बहु–उद्देश्यीय समितियां चालू की गयी।

सहकारी विपणन समिति की कार्यवधि इस प्रकार है :– समिति के सदस्य अपनी अतिरिक्त उपज समिति को बेचने के लिए तैयार हो जाते हैं। जैसे ही वे समिति को उपज ला कर देते हैं, उन्हें अपनी कृषि क्रियाओं को चलाने के लिए अग्रिम दे दिया जाता है। समिति सभी सदस्यों की उपज को एकत्रित करती है और ग्राम के अन्य सदस्यों से भी, जो इसे अपनी उपज बेचना चाहते हैं, खरीद लेती है। यह फिर उपज का विधायन कर मंडी को बेच देती है। इस कारण बिचौलियों की कोई जरूरत नहीं रहती। यदि प्रचलित कीमतें अनुकूल न हों और भविष्य में कीमतें बढ़ने की आशा हो, तो समिति वस्तु का स्टॉक एकत्र करने का निर्णय कर सकती है। जैसे ही उपज बेच दी जाती है, समिति किसान को उपज की शेष कीमत भी अदा कर देती है। विपणन समिति का एक महत्वपूर्ण लक्षण यह है कि इसका प्रबन्ध वैतनिक कर्मचारियों द्वारा किया जाता है। आमतौर पर किसी एक समिति के आधीन कई ग्राम होते हैं। उसी हालत में समिति प्रभावी और सफल हो सकती है।

सहकारी विपणन समितियों के लाभ :– कुछ पश्चिमी देशों में सहकारी विपणन बहुत ही सफल हुआ है। दुग्ध पदार्थो के सहकारी विपणन के लिए डेनमार्क विश्व में प्रसिद्ध है। सहकारी आधार पर कृषि–विपणन के अनेक लाभ है। उनमें मुख्य ये है –

1. विपणन समिति वैयक्तिक सौदाशक्ति का प्रतिस्थापन सामूहिक सौदाशक्ति द्वारा करती है। किसान स्वयं निर्बल है परंतु विपणन समिति बलवान होती है।
2. यह समिति किसानों को अग्रिम देती है और उन्हें अच्छी कीमतों की प्रतीक्षा करने के योग्य बनाती है, इसके अतिरिक्त, यह उन्हें उनकी अन्य आवश्यकताओं के लिए भी ऋण देती है।
3. समिति के अपने गोदाम और भाण्डागार भी होते हैं। इस प्रकार यह चूहों, चींटियों और नमी से

खराबहो जाने वाली फसल को बचाती है।

4. यह तेज और सस्ते परिवहन का प्रबंध भी करती है। कई बार तो यह अपने वाहनों की भी व्यवस्था करती है।
5. यह किसानों को वर्गीकृत और मानकीकृत वस्तुओं के उत्पादन के लिए प्रोत्साहन देती है और उन्हें अपनी उपज में मिलावट करने से रोकती है।
6. यह संभरण की मात्रा का नियन्त्रण करती है और इस प्रकार कीमतों को प्रभावित करती है।
7. यह बहुत से बिचौलियों को भी हटा देती है और इस प्रकार बहुत सा लाभ उनकी अपेक्षा किसान को प्राप्त होता है।
8. किसानों की उपज को बेचने के अतिरिक्त यह उनको बीज, उर्वरक, उपकरण आदि जैसी अनिवार्य वस्तुएं उपलब्ध कराती है। अतः सहकारी विपणन समिति ग्रामीण बाजार प्रणाली को पुनः व्यवस्थित करने की सर्वोत्तम पद्धति है।

सहकारी विपणन में सुधार का क्षेत्र :– सहकारी विपणन समितियों के विकास के लिए काफी बड़ा क्षेत्र उपलब्ध है। सर्वप्रथम, उच्चतर खेती, वित्त और विपणन के समायोजन की आवश्यकता है। आज यह प्रयास किया जा रहा है कि ऐसी समितियां कायम की जाएं जो इन तीनों सेवाओं को एक साथ उपलब्ध कराएं।

दूसरे, विपणन समितियों को कृषि वस्तुओं के विधायन–कार्य को भी करना चाहिए। बहुत सी वस्तुओं का यदि विक्रय से पहले विधायन कर लिया जाए, तो उनको अच्छी कीमतों पर बेचना आसान हो जाता है। रूई से बिनौले निकाल कर यदि दबा लिया जाए, तिलहनोंसे यदि तेल निकाल कर बेचा जाए, पटसन का विधायन कर यदि उसे गांठों में बांध लिया जाए आदि, तो इससे विपणन–कार्य सुविधाजनक हो जाता है।

तीसरे, सहकारी विपणन समितियां उपभोक्ताओं को प्रत्यक्ष रूप में कृषि–उत्पादन बेच सकती है (जहां कहीं भी यह संभव हो) और इस प्रकार ये बिचौलियों और उनको दिए जाने वाले कमीशन से मुक्त हो सकती हैं। चौथे, सहकारी विपणन समितियों को अपनी वस्तुओं के वर्गीकरण के लिए मजबूर करना चाहिए। वर्गीकरण से न केवल समितियों को अपनी उपज के लिए अच्छी कीमतें प्राप्त करने में सहायता मिलेगी बल्कि इनके द्वारा सदस्यों को अपने उत्पादन की किस्म उन्नत करने में भी सहायता मिल सकती है। पांचवे, सहकारी विपणन समितियों को ग्रामीण क्षेत्रों तथा मंडियों में अपने गोदाम और भाण्डागार कायम करने के लिए भी सहायता देनी चाहिए। यह सरकार द्वारा अनुदान और अर्थसाहाय्य देकर भी किया जा सकता है या स्टेट बैंक या रिजर्व बैंक द्वारा सस्ती वित्त–व्यवस्था द्वारा भी हो सकता है। छठे, सहकारी विपणन समितियों का कार्यक्षेत्र बढ़ाकर इनमें बहुत से ग्राम (यदि हो सके तो एक पूरी तहसील) शामिल कर लेने चाहिएं ताकि ये किसानों के माल का अच्छी प्रकार क्रय–विक्रय कर सकें। इस प्रकार समिति अपने प्रबंध कार्य के लिए योग्य व्यक्तियों को भी लगा सकती है। सातवें, सहकारी विपणन समितियों के लिए कृषि–आदानों अर्थात् उर्वरकों, बीजों, कृषि–मशीनरी और औजार, कीटनाशकों आदि के क्रय–विक्रय का बहुत बड़ा क्षेत्र उपलब्ध है। देश में कुल उर्वरक के वितरण का लगभग 47 प्रतिशत सहकारी विपणन समितियों द्वारा बेचा जाता है। अंतिम, सरकार को जब भी संभव एवं अनिवार्य हो, सहकारी विपणन समितियों का प्रयोग करना चाहिए। उदाहरणार्थ, सरकार ने पहले ही खाद्यान्नों में राजकीय व्यापार चालू कर दिया है। राजकीय व्यापार निगम सरकारी विपणन समितियों से सीधे ही खाद्यान्न खरीद सकता है और व्यापार के अन्य मार्गो की उपेक्षा कर सकता है। इससे भी विपणन समितियों की स्थापना को प्रोत्साहन मिलेगा।

कृषि विपणन पद्धति के दोष (समस्याएं) :– भारत जैसे देश में कृषि पदार्थो की बिक्री व्यवस्था अनेकों दोषों से भरी पड़ी है। फलस्वरूप कृषक को अपने माल की कीमत कम मिल पाती है। अनुमान लगाया जाता है कि उपभोक्ता द्वारा दी हुई कीमत का एक बहुत बड़ा भाग मध्यसीों की जेब में चला जाता है और कृषक को कम भाग मिल पाता है। यह स्थिति अत्यंत ही दयनीय है। इसके लिये निम्नलिखित को उत्तरदायी ठहराया जा सकता हैं –

1. विपणन योग्य अतिरेक कम – भारत में अधिकांश कृषकों की जोत का आकार बहुत छोटा है। यहां 66 प्रतिशत जोत 5 एकड़ से कम है तथा उत्तर प्रदेश में 81.2 प्रतिशत जोत ऐसी है जिसका आकार 5 एकड़ से कम है। इन जोतों पर कृषक इतना उत्पादन कर पाते हैं जो लगभग उनके उपयोग के लिये ही पर्याप्त होता है। अतः कृषकों के पास विपणन योग्य अतिरेक की मात्रा बहुत कम होती है जिसे वह गांवो में ही कम मूल्य पर बेच डालता है क्योंकि वह समझता है कि मंडियों में जाने से उसे व्यर्थ के खर्चो को वहन करना पड़ेगा।

2. मध्यस्थों की अधिकता – भारतीय किसान और अंतिम उपभोक्ता के बीच मध्यस्थों का तांता लगा रहता है। मंडियों में दलाल, आढ़तिये आदि व्यक्ति पाये जाते है जो कि कृषकों के अधिकांश लाभ को स्वयं हड़पने की कोशिश करते हैं। इन मध्यस्थों के कारण एक तरफ तो कृषक को उसकी उपज का कम मूल्य मिलता है तथा दूसरी ओर उपभोक्ताओं को अधिक मूल्य चुकाना पड़ता है। अखिल भारतीय ग्रामीण सर्वेक्षण समिति के अनुसार उपभोक्ता जो गेहूं का मूल्य चुकाता है कृषक को उसका केवल 58 प्रतिशत भाग ही मिल पाता है। इस संबंध में बैंकिंग जांच समिति का मत है कि कृषक को उपभोक्ता के रूपये में से चावल की बिक्री में से 66.8 प्रतिशत, गेहूं की बिक्री में 68.5 प्रतिशत एवं चीनी की बिक्री में 65.6 प्रतिशत के लगभग प्राप्त होता है। यह शोषण केवल यहीं तक सीमित नहीं है वरन् भारत में गेहूं प्रतिवेदन में आश्चर्यजनक बात यह है कि न केवल आढ़तिये वरन् अन्य लोग भी जैसे – मुनीम, चौकीदार, पानी पिलाने वाला आदि भी अपने को बिके हुये उत्पादन में हिस्सा लेने के अधिकारी समझते हैं।

3. विवशतापूर्ण विक्रय – भारत में अधिकतर किसान गरीब है। फसल कटने के बाद उपज को कुछ समय तक अपने पास रखने की क्षमता उनमें नहीं होती क्योंकि ऋणों का भुगतान, लगान का भुगतान, बच्चों की शिक्षा, दूसरी फसल के लिये सिंचाई की व्यवस्था, खाद्य एवं अन्य सुविधाओं की व्यवस्था तथा अनेक घरेलू आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये उन्हें धन की आवश्यकता पड़ती हैं परंतु कृषि को छोड़कर उनके पास इन सबकी व्यवस्था करने के लिए कोई विकल्प भी नहीं होता एवं इसी के साथ–साथ उपज को रखने के लिये पर्याप्त स्थान का भी गिरना शुरू हो जाता है क्योंकि कृषक अपनी वस्तुओं का विक्रय करने के लिये बाजार में आने लगते हैं। अतः कृषक को प्रतिकूल समय एवं बाजार भाव पर अपने उत्पादन को बेचने के लिये विवश हो जाना पड़ता है।

4. मण्डियों में कपाट – भारतीय मण्डियों में अनेक प्रकार की कपटपूर्ण पद्धतियां प्रचलित है। अनियन्त्रित मण्डियों में दलाल क्रेता तथा विक्रेता दोनों की तरफ से भाव निश्चित करके कमीशन लेते हैं। उनका व्यापारिक वर्ग से गहरा संबंध होता है। अतः कृषक के साथ सहानुभूति का प्रदर्शन करके व्यापारी के पक्ष में भाव तय करते हैं। इसी के साथ साथ तराजू एवं बांट में भी धोखा रहता है। परिणामस्वरूप कृषक को हानि का ही सामना करना पड़ता है।

5. यातायात की समस्यायें – भारतीय किसानों के पास यातायात के साधनों का भी पूर्ण अभाव रहता है। देश के अधिकांश गांवों में रेल या सड़क इत्यादि आधुनिक यातायात के साधनों का अभाव है। यदि बैलगाड़ी, ऊंट इत्यादि के द्वारा माल को मण्डियों तक पहुंचाया जाये तो यातायात का खर्च बहुत अधिक हो जाता है जिस कारण कृषक गांवों में ही व्यापारी को कम मूल्य पर बेचने के लिए विवश हो जाता है। कुछ क्षेत्रों में यह भी देखने को मिलता है कि ऐसे मध्यस्थ वर्ग जिनके पास यातायात के साधन उपलब्ध है कृषकों का माल देहातों से खरीदकर शहरों के गोदामों में भर देते है।

6. श्रेणीकरण और प्रमापीकरण का अभाव – भारत का किसान एक ही समय में अनेकों प्रकार की फसलों को बोता है जैसे – गेहूं, चना, जौ आदि। अतः इन फसलों को काटते समय व भूसे व अन्य को अलग करते समय किसान इस बात की सावधानी रखने में असमर्थ रहता है कि वे आपस में न मिले। कुछ क्षेत्रों में देखा गया है कि किसान एक ही फसल की कई किस्म बोता है जैसे – अपनी भूमि के कुछ क्षेत्र पर एक किस्म का गेहूं बोता है तथा कुछ क्षेत्र पर दूसरी किस्म का गेहूं बोता है लेकिन फसलों को काटते समय वह गेहूं और भूसे को अलग–अलग नहीं कर पाता और दोनों किस्मों को एक जगह मिला देता है। परिणामस्वरूप कृषि उपज का श्रेणीकरण व प्रमापीकरण करना कठिन हो जाता है।

7. उचित गोदामों तथा भण्डारगृहों का अभाव – भारतीय किसानों के पास ऐसे गोदामों अथवा भण्डारगृहों का अभाव है जहां पर वे अपने माल को वैज्ञानिक विधि से सुरक्षित रख सकें। ये लोग इतने अवैज्ञानिक ढंग से माल को अपने घरों मे रखते हैं कि उनकी उपज का काफी बड़ा भाग चूहों, दीमक, सीलन तथा घुन इत्यादि के कारण नष्ट हो जाता है। अखिल भारतीय ग्रामीण सर्वेक्षण समिति के अनुसार चूहों व अन्य कीड़ों द्वारा कृषक की 10 प्रतिशत से लेकर 20 प्रतिशत तक उपज नष्ट कर दी जाती है।

8. उपज की घटिया किस्म – खेती करने की प्राचीन पद्धति, अच्छे बीज और खाद का अभाव, फसल के प्रमापीकरण का अभाव इत्यादि के कारण कुछ कृषकों की उपज का स्तर निम्न होता है, जिससे उन्हें अपनी उपज का उचित मूल्य प्राप्त नहीं हो पाता।

9. वित्तीय सुविधाओं का अभाव – सरकार और सहकारी समितियों द्वारा कृषकों को वित्त प्रदान किये जाने की व्यवस्था के होते हुए भी कृषकों को अपनी वित्तीय सुविधाओं के लिए साहूकार अथवा मण्डी के व्यापारी पर निर्भर रहना होता है, जिसके कारण वह केवल अधिक ब्याज देने के लिए ही मजबूर नहीं होता

वरन् उसे अपनी फसल उन्हें कम मूल्य पर बेचने के लिए बाध्य भी हो जाता है।

10. मूल्य संबंधी सूचनाओं का अभाव – हमारे देश में अभी तक कोई ऐसी स्थायी व्यवस्था नहीं है जो किसानों को कृषि वस्तुओ के नवीनतमउ भाव तथा बाजार स्थिति के संबंध में उचित समय पर ठीक–ठीक सूचना देती हो। समाचार पत्रों में दिये गये भावों का भी किसान अपनी अज्ञानता के कारण कोई लाभ नहीं उठा पाते।

कृषि–विपणन के दोष :–

1. भारत में कृषि–विपणन की दशा बहुत ही बुरी है। किसान बहुत निर्धन एवं अशिक्षित है। उसे अपनी उपज के क्रय–विक्रय के संबंध में पूर्ण जानकारी भी उपलब्ध नहीं सबसे पहले तो उसके पास अपनी उपज का संग्रह करने के लिये गोदामों की सुविधा उपलब्ध होनी चाहिए। गोदामों के रूप में उपलब्ध सुविधाओं की यह हालत है कि ग्रामों में 10 से 20 प्रतिशत उपज चूहों, चींटियों आदि द्वारा नष्ट कर दी जाती है।

2. दूसरे किसान इतना निर्धन और ऋणग्रस्त है कि वह अपने ऋणों का भुगतान करने के लिए अपनी उपज महाजन या व्यापारी को बचने के लिये तैयार हो जाता है। इस प्रकार के बाध्य–विक्रय के कारण औसत किसान की कमजोर स्थिति और भी अधिक कमजोर हो जाती है।

3. तीसरे, ग्रामीण क्षेत्रों में परिवहन सुविधाएं इतनी बुरी है कि समृद्ध किसन भी जिसके पास काफी अतिरेक उपलब्ध होता है, मंडियों में जाना नहीं चाहते। बहुत सी सड़कें कच्ची है जो बरसात के मौसम में इस्तेमाल नहीं की जा सकती।

4. चौथे, मंडियों में परिस्थितियां इतनी बुरी है कि किसान को मंडियों में जाकर काफी प्रतीक्षा करनी पड़ती है, तब ही वह अपनी फसल को बेच पाता है। इसके अतिरिक्त, सौदा–प्रणाली ऐसी है कि इससे किसान को नुकसान ही होता है। किसान आढ़तियें को अपनी फसल बेचने के लिए दलाल की सहायता लेता है दलाल और आढ़तिया खुले रूप से नहीं बल्कि गुप्त रूप से सौदा करते है। दलाल आमतौर पर आढ़तियों से मिला होता है और परिणामतः जो कीमत तय की जाती है, उससे किसान की अपेक्षा आढ़तिये को अधिक लाभ होता है। इसके अलावा माप और तौल के गलत बांट द्वारा किसान को लूटा जाता है और यह कह कर कि उसकी फसल घटिया किस्म की है, उसे कम मूल्य स्वीकार करने के लिए मजबूर किया जाता है। किसान को मंडी में हानि ही होती है।

5. पांचवे, किसान और अंतिम उपभोक्ता के बीच बिचौलियों की संख्या बहुत अधिक है और इसलिए उपज का काफी भाग वे हड़प कर जाते हैं।

6. छठे, किसानों को बड़ी–बड़ी मंडियों में प्रचलित कीमतों के बारे में सूचना भी नहीं मिलती और न ही उन्हें प्रत्याशित बाजार परिस्थितियों और कीमतों संबंधी जानकारी होती है। परिणामतःकिसानों को जो भी कीमत दलाल और आढ़तियें देने को तैयार हो जाएं, स्वीकार करनी पड़ती है।

कृषि–विपणन को उन्नत करने के उपाय :–

सरकार कृषि–विपणन की परिस्थितियों को उन्नत करने के बारे में जागरूक है और उन्हे सुधारने के लिए कई उपाय किए है। अखिल भारतीय भाण्डागार निगम की सीापना की गई है जिसका उद्देश्य कस्बों और मंडियों में गोदाम कायम करना और उनका प्रबन्ध करना है। ग्रामों में गोदामों की संख्या बढ़ाने के लिए सहकारी समितियों को अनिवार्य वित्तीय स्थिति उन्नत करने के लिए और उन्हें महाजनों के चंगुल से मुक्त कराने के लिए सहकारी साख समितियां उधार देती हैं। अतः किसानों की उपज का क्रय–विक्रय करने के लिए सहकारी विपणन एवं विधायन समितियां आरंभ की गई हैं। ग्रामीण परिवहन को विकसित किया जा रहा है। विनियमित मंडियां स्थापित की गयीं और इनमें किसानों के हितों की रक्षा के लिए कदम उठाए गए। अंतिम, बाजार संबंधी सूचना का प्रचार करने के लिए भी उपाय किये गए। खाद्यान्नों की कीमतें सरकार द्वारा कृषि कीमत आयोग की सिफारिशों के आधार पर निश्चिय की जा रही हैं। सरकार भारतीय खाद्य निगम और भारतीय रूई निगम द्वारा एक बड़े व्यापारी के रूप में कार्य कर रही है और कृषि–उत्पादन का क्रय–विक्रय करती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. गलोट आर. (2007) भारत में कृषि ऋण मे वर्तमान मुददे एक आकलन आर.बी. आई. सामयिक पत्र, 28:79–100.
2. गुप्ता पूजा (2008), ''एग्रो–इनडस्ट्रीज–इस्ट्रेन्थ एग्रीकल्चर सेक्टर'', सनराइज पब्लिकेशन. दिल्ली. पी.पी. 322–342
3. शर्मा एस.एन. (2008), रूल ऑफ एग्रो–बेसड इनडस्ट्रीज इन रूरल डेवलपमेंट : ए रीजनल स्टडी'', ईकोनामिक्स ऑफ एग्रो–इनडस्ट्रीज–एडीटेड बाय – केशव देव गौर एंड

अनिल कुमार सिंग सनराइज पब्लिकेशन, दिल्ली, पी.पी. 30–42

4. बारगल, हिटेनोलरा. गुप्ता, गायत्री. शर्मा एस हिज (2008), ''मार्केटिंग इन एग्रीकल्चर इनडस्ट्री'', ईकोनामिक्स ऑफ एग्रो–इनडस्टीज–एडिटेड बाय–केशव देव गौर एंड अनिल कुमार सिंग, सनराइज पब्लिकेशन, दिल्ली, पी.पी. 117–125
5. कचरू, ज्योति. कचरू दिलीप एवं शर्मा आरती (2010), ग्रोथ एंड इनइंस्टेबिल्टी ऑफ मेजर आइलसीडस ऑफ इंडिया बेसड आन लाजिस्टिक एंड कोपेक्स मॉडल, एग्रीकल्चर सिस्यूशन इन इंडिया जनवरी 2010 पी पी 589–600
6. प्रमीला व्ही एंड हुसैन ए. शकीर (2010), ''एग्रो–प्रोसेसिंग बाय को–आपरेटिव'', एग्रीकल्चर सिस्यूशन इन इंडिया अक्टूबर 2006.
7. मैसूरी, सुधा. गजानन, टी.एम. एवं मूर्ति. डी. श्रीनिवास (2010). लिंकिंग फार्मस टू मार्केट एग्रो इंडस्ट्री मॉडल्स पार्टनरशिप. जनरल एग्रीकल्चर मार्केटिंग।
8. सिंह, हरबंस पंजाब कृषि, एम.एस.सी संस्थागत ऋण के स्थानिक वितरण का अध्ययन थीसिस (अप्रकाशित, 1976) पी. ए.यू. लुधियाना
9. प्रबजीत, फार्म, एम.एस.सी. के विभिन्न श्रेणियो के बीच संस्थागत ऋण के वितरण पेटर्न में एक अध्ययन। थीसिस (अप्रकाशित 1976) पी.ए.यू. लुधियाना
10. सागर विद्या कृषि अर्थशास्त्र की इंडियन जनरल वाल्यूम (राजस्थान 1956–61) में उत्पादकता एवं उत्पादन की वृद्धि का एक घटक विश्लेषण। 32(1–4)19787–पी. 108
11. एलरानो एम.और एस.आर. बॉण्ड (1991): पैनल डेटा के लिए चिन्हित कटियन के कुछ परीक्षण: मोंटे कार्लो सबूत और रोजगार समीकरणों के लिए एक आर्थिक अध्ययन की समीक्षा।
12. विन्सवागर एच. और शाहीडयोर खांडेकर (1992): भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर औपचारिक वित्त प्रभाव, विश्व बैंक वर्किंग पेपर नंबर 949.
13. बॉण्ड एस.आर. (2002): करो ग्रामीण बैको बात है? 780–795: भारतीय सामाजिक बैंकिंग प्रयोग', अमेरिकी आर्थिक समीक्षा, 95 से साक्ष्य

Unnati International Journal of Multidisciplinary Scientific Research, U.I.J.M.S.R.
Peer Reviewed - Refereed Journal & Impact factor - 3.2, Open Access, Double Blind, Monthly Online Journal
ISSN : 2581-8872, Vol. : 1, No. : 10, Nov. - 2019
2019

जनजातीय क्षैत्र बड़वानी जिले में भूमि उपयोग स्वरूप का अध्ययन

रानी वास्केल
सहायक प्राध्यापक, भूगोल, शहीद भीमा नायक शा. स्ना., महाविद्यालय, बड़वानी, म.प्र.

शोध सारांश :– विज्ञान के इस युग में क्रमशः विकासोन्मुख देश जहाँ प्रगति के पथ पर तीव्रगति से अग्रसर है। वहीं आज भी जंगलों में ऐसे लोग निवास करते है, जो आधुनिक उपलब्धियों से अछूते संस्कृति के वर्तमान स्वरूप से अपरिचित आधुनिक कृषि, उद्योग, शिक्षा इत्यादि से अनभिज्ञ तथा आदिमानव से कुछ ही अधिक विकसित है, ऐसे अपरिचित लोगों का उल्लेख भारतीय संविधान में अनुसूचित आदिम जाति या जनजाति के अंतर्गत किया गया है। प्रस्तुत शोध जनजातीय अध्ययन क्षैत्र बड़वानी में भूमि उपयोग स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयास पर आधारित है।

जनजाति एक निश्चित भू–भाग में रहने वाला एक आदिम मानव समूह हैं, जो एक सामान्य भाषा, धर्म प्रथा, परम्परा, व्यवसाय और अन्य सामाजिक नियमों के द्वारा एक सूत्र में बंधकर एक सामाजिक संगठन को जन्म देता है।

डॉ. मजूमदार के अनुसार – ''एक जनजाति अनेक परिवारों के समूह का एक संकलन होता है, जिसका एक सामान्य नाम होता है, जिनके सदस्य एक निश्चित भू–भाग पर रहते हैं, सामान्य भाषा बोलते है और विवाह के विषय में कुछ निषेधों का पालन करते हैं और एक निश्चित एवं उपयोगी आदान–प्रदान का परस्पर विकास करते हैं।''

अध्ययन क्षैत्र :– जनजातीय क्षैत्र बड़वानी जिला मध्यप्रदेश राज्य के दक्षिण–पश्चिमी भाग में स्थित है। भौगोलिक दृष्टि से बड़वानी जिला $21^0 37'$ से $22^0 22'$ उत्तरी अक्षांश से $74^0 27'$ से $75^0 30'$ पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। जिले का भौगोलिक क्षैत्रफल 3664.68 वर्ग किलोमीटर है। बड़वानी जिले के उत्तर में धार जिला, पूर्व में जिला खरगोन, पश्चिम में अलिराजपुर जिला एवं दक्षिण में महाराष्ट्र राज्य स्थित है।

अध्ययन का उद्देश्य :– जनजातीय अध्ययन क्षैत्र बड़वानी जिले में भूमि उपयोग स्वरूप का अध्ययन करना ।

शोध प्रविधि :– आँकड़ों का संकलन द्वितीयक आँकड़ों जैसे इंटरनेट, पुस्तकों इत्यादि के आधार पर किया गया एवं आँकड़ों का प्रदर्शन वृत्त आरेख द्वारा किया है।

भूमि उपयोग स्वरूप :– कृषि भूगोल की मुख्य संकल्पना भूमि से संबंधित है। भूमि एक प्राकृतिक संसाधन है। कृषि प्रधान देश में कृषि भूमि उपयोग का उतना ही महत्व होता है, जितना मानव जीवन के लिए जल, क्योंकि मानव की प्राथमिक आवश्यकताओं तथा कृषि आधारित उद्योगों के लिए प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष योगदान कृषि का होता है।

अतः भूमि उपयोग उस क्षैत्र की कृषि क्षमता की दृष्टि से भूमि की श्रेष्ठता की ओर संकेत करता है। किसी भी क्षैत्र के भूमि उपयोग के अध्ययन से प्रादेशिक वितरण प्रतिरूप का ज्ञान होता है। इसी के आधार पर आगामी भूमि उपयोग नियोजन संभावित है।

आँकड़ों का सारणीयन एवं विश्लेषण :– जनजाति अध्ययन क्षैत्र बड़वानी में भूमि उपयोग का स्वरूप किस प्रकार का है, इसे प्रदर्शित करने का प्रयास किया गया है। अतः अध्ययन क्षैत्र में आँकड़ों के आधार पर आरेख एवं विश्लेषण इस प्रकार है :–

तालिका क्रं. – 1
बड़वानी जिले में भूमि उपयोग स्वरूप

भूमि उपयोग	वर्ष – 2001–02		वर्ष 2015–16	
	क्षेत्रफल हेक्टेयर में	प्रतिशत (कुल भौगोलिक क्षेत्र)	क्षेत्रफल हेक्टेयर में	प्रतिशत (कुल भौगोलिक क्षेत्र)
वन भूमि	353791	50.49	183067	34.55
कृषि योग्य भूमि	10684	1.52	6865	1.30
उसर एवं गैर उसर भूमि	71298	10.16	73565	13.88

निराफसली क्षेत्र	232472	33.18	230728	43.55
कृषि हेतु जो भूमि उपलब्ध नहीं है	27579	3.94	31215	5.89
चारागाह	4890	0.70	4406	0.83
कुल	700714	100	529846	100

स्त्रोत – भू–अभिलेख कार्यालय, बड़वानी

उपरोक्त तालिका एवं आरेख के अध्ययन से ज्ञात होता है कि अध्ययन क्षेत्र बड़वानी में वर्ष 2001 में कुल क्षेत्रफल का 50.49 प्रतिशत क्षेत्र वन भूमि का था जो वर्ष 2015–16 में घटकर 34.55 प्रतिशत हो गया है। कृषि योग्य भूमि का प्रतिशत वर्ष 2001 में 1.52 प्रतिशत था जो वर्ष 2015–16 में घटकर 1.30 प्रतिशत हो गया है। उसर एवं गैर उपयुक्त भूमि वर्ष 2001 में 10.46 प्रतिशत थी जो कि बढ़ कर वर्ष 2015–16 में बढ़कर 13.88 प्रतिशत हो गया है। निराफसली क्षेत्र वर्ष 2001 में 33.18 प्रतिशत था जो कि वर्ष 2015–16 में बढ़कर 43.55 प्रतिशत हो गया है। कृषि के लिए अनुपलब्ध भूमि वर्ष 2001 में 3.94 प्रतिशत थी जो वर्ष 2015–16 बढ़कर 5.83 प्रतिशत हो गयी है। चारागाह क्षेत्र वर्ष 2001 में 0.70 प्रतिशत था जो कि वर्ष 2015–16 बढ़कर 0.83 प्रतिशत हो गया है।

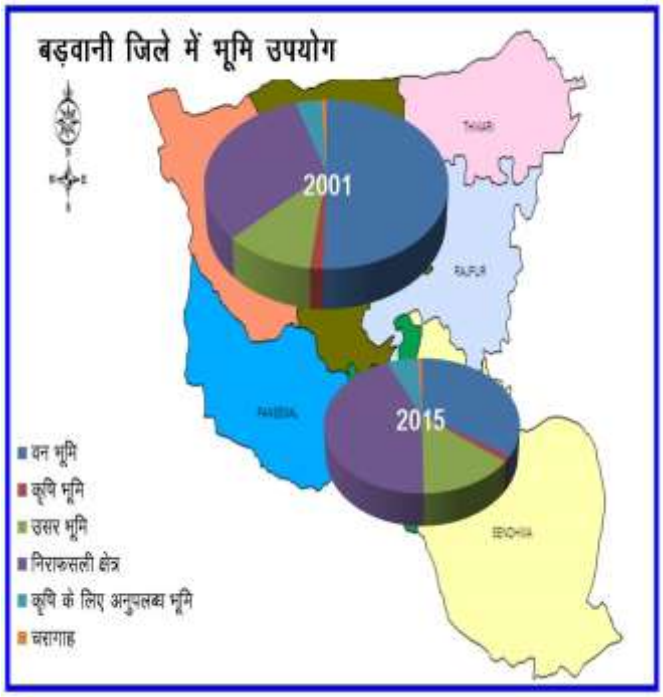

तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि वर्ष 2001 से वर्ष 2015–16 की अवधि में वन भूमि में लगभग 15 प्रतिशत की कमी आयी है। उसर एवं गैर उपयुक्त भूमि, निराफसली क्षेत्र, तथा कृषि के लिए अनुपलब्ध भूमि के क्षेत्रफल में निरंतर वृद्धि दर्ज की गई है।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र बड़वानी में वर्ष 2001–02 एवं 2015–16 वर्षों के भूमि उपयोग के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा स्पष्ट हो गया है कि अध्ययन क्षेत्र में भूमि उपयोग स्वरूप परिवर्तित हुआ है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. गुप्ता डॉ. मंजू (2017), ''जनजातियों का सामाजिक'', आर्थिक उत्थान, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
2. कुमार प्रमिला एवं श्री कमल शर्मा (1985) कृषि भूगोल, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल।
3. जोशी हेमलता एवं एल.आर. भगोरा (2012) ''जनजातियों का भौगोलिक अध्ययन'' यूनिवर्सिटी बुक हाउस (प्रा.) लि. जयपुर।

Unnati International Journal of Multidisciplinary Scientific Research, U.I.J.M.S.R.
Peer Reviewed - Refereed Journal & Impact factor - 3.2, Open Access, Double Blind, Monthly Online Journal
ISSN : 2581-8872, Vol. : 1, No. : 10, Nov. - 2019
2019

बुंदेलखंड के कालिंजर का वास्तुशिल्प

प्रियंका पाण्डेय
शोधार्थी, प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर

कालिंजर का दुर्ग भारतवर्ष के सुप्रसिद्ध स्थानों में से एक है, कालिंजर को पुरातन काल से महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। कालिंजर नाम की उत्पत्ति "कालजरयति" से हुई है, इसके तीन अर्थ है 1. पर्वत और उसका समीपवर्ती क्षेत्र, 2. धार्मिक भिक्षुओं या साधुओं की सभा, 3. शिव की उपाधि। इस प्रकार कालिंजर विभिन्न अर्थों को समाए हुए हैं। कालिंजर के नाम का इतिहास उस कथा से संबंधित है, जब समुद्र मंथन के बाद उस से निकले कालकूट का पान भगवान शिव ने किया। गरल पान के बाद शिव ने रुचिकर स्थान की खोज की तथा इस स्थान को पसंद किया भगवान शिव ने कालकूट को पान कर उसको पचा डाला गरल की क्षमता विख्यात है, उसे पीने से मृत्यु होती है। शिवजी ने कालकूट को पचाकर काल को चुनौती ही नहीं दी वरन उस को पचाकर काल को जीर्ण कर दिया इस प्रकार से इस स्थान पर शिवजी ने काल को जीर्ण किया इस कारण इस स्थान एवं भगवान शिव का नाम कालिंजर हो गया। वायु पुराण, लिंग पुराण, एवं कूर्म पुराण में इसका उल्लेख है कि शिव जी ने यहां पर काल को भी जीर्ण किया इसलिए भविष्य में इसका नाम कालिंजर होगा। इस प्रकार से इसका नाम कालिंजर या कालिंजरगिरी स्वयं भगवान शिव से उद्भूत बतलाया जाता है जो काल अथवा समय के रूप में प्रत्येक वस्तु के विनाशक और काल देवता है।

कालिंजर विश्व का सबसे प्राचीनतम स्थल है जहां मानव सभ्यता का विकास स्पष्ट रूप से दिखलाई देता है। यहां पुरापाषाण युग से लेकर बुंदेलो के शासनकाल तक के अवशेष उपलब्ध होते हैं। यह अवशेष उस वस्तु सामग्री से निर्मित हुए हैं जो यहां आसानी से सुलभ है। मुख्य रूप से यहां गुप्त युगीन पूरा अवशेष से लेकर चंदेल कालीन पूरा अवशेष सर्वाधिक है। जिनको देखकर उस समय की वास्तुशिल्प का बोध होता है तथा सामाजिक व्यवस्था का भी बोध होता है। यहां की वास्तु परंपरा वराहमिहिर की बृहदसंहिता, विश्वकर्मा रचित विश्वकर्म प्रकाश तथा विश्वकर्मीय शिल्पशास्त्र, मयदानव रचित यम शिल्प तथा मयमत काश्यप और भारद्वाज रचित वास्तुतत्व तथा बैखानस और सनत्कुमार रचित वास्तुशास्त्र पर आधारित है। जिन वस्तुओं को और स्थानों को वास्तुशिल्प के अंतर्गत रखा जाता है। उनमें भवन, निवास स्थल, देवालय, राजप्रसाद, दुर्ग, जिलासे और मूर्तियां है। कालिंजर में उपलब्ध आवासीय स्थानों को जातीय आधार पर निर्मित किया गया था। आवास स्थल जातियों के आधार पर छोटे बड़े होते थे, आवास स्थल पर अनेक देवताओं का विभिन्न दिशाओं में वास माना जाता था।

कालिंजर की वास्तु शिल्प शैली :– कालिंजर नहीं जो वास्तुशिल्प के उदाहरण उपलब्ध होते हैं उनमें सबसे प्राचीन गुप्त युग के वास्तु कला स्थल है। कालिंजर में उपलब्ध नीलकंठ मंदिर के अंदर का भाग और उसके अंदर की मूर्तियां अन्य शैलियों से मेल नहीं खाती। गुप्त युग के पश्चात इस क्षेत्र में गुर्जर प्रतिहार शैली का विकास हुआ कालिंजर कुछ दिनों के लिए गुर्जर प्रतिहार राजाओं के अधीन रहा इसलिए उस युग का वास्तु शिल्प शैली से प्रभावित हुआ। इस शैली के अंतर्गत मुख्य मंडप, महामंडल, कक्षासन निर्मित हुए। गुर्जर प्रतिहार शैली के पश्चात चंदेली शैली का विकास हुआ। इस शैली को पंचायतन नागरी शैली के नाम से पुकारा गया। धार्मिक स्थल के प्रमुख इससे निर्मित हुए गुर्जर प्रतिहार शैली से मिलती जुलती है। नवी शताब्दी से लेकर 11 वीं शताब्दी तक इस शैली का अनुसरण किया जाता रहा उसके पश्चात इस क्षेत्र में तुर्क शैली का विकास हुआ जिसका आगमन महमूद गजनवी के समय में हुआ और औरंगजेब के शासनकाल तक इस शैली को अपनाकर अनेक निर्माण काल हुए कालिंजर का राष्ट्रकूट महल इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। इस शैली के पश्चात मिश्रित शैली का विकास हुआ जो बाद में बुंदेली शैली के नाम से विख्यात हुई इस शैली से कालिंजर में अनेक भवन दुर्ग के ऊपर और नीचे निर्मित हुए मुख्य रूप से चौबे महल, राजा मानसिंह का महल और ज्योतियां बस्ती दुर्ग के ऊपर इसके प्रत्यक्ष उदाहरण है, कालिंजर में उपलब्ध वास्तुशिल्प को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है।

दुर्ग निर्माण शैली :– कालिंजर दुर्ग का उल्लेख वेदों महाकाव्य और पुराणों में वर्णित है यहां का राजनीतिक महत्व उतना अधिक नहीं था जितना धार्मिक महत्व है कालिंजर दुर्ग के ऊपर मृगधारा कोटतीर्थ सरोवर बुद्धक क्षेत्र एवं नीलकंठ मंदिर प्रसिद्ध धार्मिक स्थल है कालिंजर दुर्ग का निर्माण जन सूत्रों के अनुसार चंदेल

वंश के संस्थापक चंद्र वर्मा ने कराया किंतु इसके ऐतिहासिक साक्ष्य नहीं है। सुप्रसिद्ध विद्वान कनिंघम के अनुसार इस दुर्ग का निर्माण ई की प्रथम शताब्दी में हुआ अन्य ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार इस दुर्ग का निर्माण केदार वर्मन ने कराया था जिसका अस्तित्व दूसरी शताब्दी से लेकर सातवीं शताब्दी के मध्य कभी था। कालिंजर दुर्ग अत्यंत महत्वपूर्ण होने के कारण आक्रमणकारियों का शिकार बना जिसके कारण यहां की अनेक कलाकृतियां नष्ट हो गई केवल चंदेल कालीन मूर्तियां और धर्म स्थल यहां शेष रह गए हैं। कहते हैं कि इस दुर्ग को जीतने के लिए हर शक्तिशाली नरेश प्रयास करता था यह दुर्ग अभेद्य दुर्ग था जिसको जीत पाना बड़ा मुश्किल था। संपूर्ण कालिंजर नगर परकोटे से घिरा हुआ था तथा इसमें दो द्वार थे तथा दुर्ग के ऊपर जाने के लिए सात दरवाजे थे यह 7 दरवाजे आलमगिरी दरवाजा चंडी दरवाजा बुध मंत्र मध्य बंद दरवाजा लाल दरवाजा और बड़ा दरवाजा के नाम से प्रसिद्ध है इनमें से कुछ दरवाजे नष्ट हो चुके हैं सुप्रसिद्ध विद्यमान पागसन के अनुसार यह 7 दरवाजे सूर्य उपासना के प्रतीक है इस दुर्ग का विस्तार ग्वालियर दुर्ग से लंबाई में कुछ कम तथा ऊंचाई में ग्वालियर दुर्ग से कुछ अधिक है। कालिंजर दुर्ग में अनेक अभिलेख भी उपलब्ध हुए हैं इनमें से दो अभिलेख गुप्तकालीन हैं जो ब्राम्ही लिपि में है एक अभिलेख नीलकंठ मंदिर में है जो महाराज मदन वर्मा के समय का है तथा कुछ अभिलेख परमार्थी देव के समय के है और अंतिम अभिलेख वीर वर्मा का है जो त्रिलोक वर्मा के पुत्र था।

मूर्ति शिल्प इस क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण मूर्तियां उपलब्ध होती है जो वास्तुशिल्प मूर्ति शिल्प की दृष्टि से महत्वपूर्ण है अधिकांश मूर्तियां शिव उपासना से संबंधित है इसमें शिवलिंग, पंचमुखी शिव मूर्ति, सहस्त्र शिवलिंग मूर्ति तथा मूर्ति और शिवलिंग की संयुक्त मूर्ति नंदीश्वर के ऊपर शिवलिंग तथा काल भैरव तथा निगडी भैरव आदि की मूर्तियां प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती है इसके अतिरिक्त पार्वती गणेश स्वामी कार्तिकेय की मूर्तियां भी शिव मत से संबंधित है कुछ मूर्तियां यहां विष्णु मत से संबंधित भी है अधिकांश मूर्तियां पत्थर से निर्मित की गई है तथा यह मूर्तियां चंदेल कालीन है यहां उपलब्ध कुछ मूर्तियां देवी–देवताओं पालो यक्ष यक्षिणी ओं नागो तथा अन्य पशु पक्षियों की भी है कुछ तांत्रिक मूर्तियां भी यहां उपलब्ध होती है कुछ ऐसी मूर्तियां भी हैं जिनका संबंध जैन और बौद्ध धर्म से है अलंकरण और मूर्ति शिल्प की दृष्टि से यह मूर्तियां कलात्मक है और पुरातात्विक महत्व की है।

जलाशय :– कालिंजर में उपलब्ध जलाशय दो प्रकार के हैं प्रथम जलाशय प्राकृतिक जलाते हैं। जिसका निर्माण अपने आप हुआ इन जलाशयों में सुरसरि गंगा (दुर्ग के नीचे) सुरंग वाह गंगा (दुर्ग के ऊपर) पांडू कुंड, पातालगंगा, अमृतधारा और मजार ताल इसी कोटि के जलाशय हैस दुर्ग के ऊपर उपलब्ध खंभार ताल कुछ इसी प्रकार का है इसके अतिरिक्त दुर्ग के ऊपर कोट तीर्थ, बुड्ढा बुढ़िया ताल, राम कोटरा ताल, शनिचरी तलैया तथा अनेक प्रकार के बीहड़ और कुएं यहां के चंदेल नरेश द्वारा निर्मित किए गए थे। दुर्ग के नीचे बेलाताल, गोपाल ताल, अनेक बीहड़ और सरोवर है जो किसी युग के जल पूर्ति के साधन थे वर्तमान समय में भी ऐतिहासिक महत्व है। कहते हैं कि सागर बांध का निर्माण चंदेल नरेश ने कराया था वह जलापूर्ति का सबसे बड़ा साधन था इस बांध को गजनी नरेश महमूद गजनवी ने तोड़ दिया था इस प्रकार हम देखते हैं कि कालिंजर का वास्तुशिल्प ऐतिहासिक दृष्टि से आने की गौरव गाथा गा रहा है इसके संरक्षण की आवश्यकता है लोगों के लिए यह महत्वपूर्ण है।

संदर्भ सूची :–

1. आप्टे, वामनशिवरामः संस्कृत हिंदी शब्दकोश, पृष्ठ 262
2. पूर्वोक्त भाग 21 पृष्ठ 22
3. गजटईयर नार्थ––वेस्ट प्रोविंसेस
4. एटकिंसन, गजट ऑफ बुंदेलखंड
5. ए.एस.आई. रिपोर्ट कनिघम
6. पागसन, डब्ल्यू आर ए हिस्ट्री ऑफ बुंदेलाज
7. शर्मा, बी एन आईकनोग्राफी ऑफ सदाशिव
8. विंध्यक्षेत्र का ऐतिहासिक भूगोलकृडॉ. कन्हैयालाल अग्रवाल
9. चंदेल और उनका राजत्वकाल––केशव चंद्र मिश्र
10. बुंदेलखंड का पुरातत्व––एस डी त्रिवेदी
11. बुंदेलखंड का ऐतिहासिक मूल्यांकन––राधाकृष्ण बुंदेली
12. उत्तर प्रदेश की पुरा संपदा––ठाकुर प्रसाद सिंह
13. अजय गढ़ और कालिंजर की देव प्रतिमाएं डॉ. सुशील कुमार सुल्लेरे
14. कालिंजर––स्वर्गीय गोवर्धन दास जी त्रिपाठी
15. कालिंजर––हर प्रसाद शर्मा, अतर्रा
16. वीरों का गढ़ कालिंजर––वासुदेव त्रिपाठी

Unnati International Journal of Multidisciplinary Scientific Research, U.I.J.M.S.R.
Peer Reviewed - Refereed Journal & Impact factor - 3.2, Open Access, Double Blind, Monthly Online Journal
ISSN : 2581-8872, Vol. : 1, No. : 10, Nov. - 2019
2019

सामाजिक चुनौतियाँ और जीवन मूल्य

प्रीती सिंह
शोधार्थी, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

''हम कौन थे क्या हो गए और क्या होंगे अभी,
आओ विचारें बैठकर ये समस्याएं सभी''

मैथलीशरण गुप्त के उक्त शब्द आज हर किसी के जुबान पर हैं लेकिन समझ कोई नहीं रहा है। सत्य, विश्वास, संवेदना, स्नेह, उदारता, सहयोग तथा परोपकार ये मानव जीवन के ऐसे आभूषण रहे हैं, जो न सिर्फ उसे अलंकृत करते हैं, बल्कि जीवन में सर्वोपरि बनाते हैं। इन मूलभूत तथ्यों को केंद्र में रखकर आज पुनः मूल्योंन्मुखी विकास की दिशा की ओर आत्मचिंतन एवं मंथन करने की आवश्यकता है।

विश्व ऐसे त्रासदीयुक्त वातावरण से गुजर रहा है, जिसमें संवेदनाओं का कोई महत्त्व नहीं रह गया। यहां व्यक्तिवाद उस सीमा तक हावी है कि मानवीय संबंधों की जड़े बड़ी खोखली हो गई हैं। संवेदनशीलता, भावनात्मकता, परस्पर स्नेह, आपसी भाईचारा, सच्चाई, एक–दूसरे का भरोसा जैसे मूल्य मानव समाज के बुनियादी आधार हैं, मानव के व्यक्तिगत स्वार्थ और भोगवादी वृत्ति की चकाचौंध में विलीन होते दिखाई देते हैं।

उदारीकरण–निजीकरण–भूमंडलीकरण के दौर में प्रत्येक स्थानीयता, सामाजिकता, जातीयता और राष्ट्रीयता आपनी खोज फिर से करने को तत्पर हैं। ''भारतीयता की खोज आज के संदर्भ में दो दृष्टियों से आवश्यक है। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद देश में एक सांस्कृतिक अराजकता व्याप्त हो गई है। स्वदेश और स्वदेश की भावनाएँ अशक्त होती जा रही हैं। हम बेझिझक पश्चिमी अनुकरण कर अपनी अस्मिता खोते जा रहे हैं। यह प्रवृत्ति एक छोटे, पर प्रभावशाली, तबके तक सीमित है, पर उसका फैलाव हो रहा है। यदि इसे हमने बिन बाधा बढ़ने दिया तो हमें परंपराओं की संभव उर्जा से वंचित होना पड़ेगा। और हमारी स्थिति बहुत कुछ त्रिशंकु जैसी हो जाएगी। दूसरा कारण और भी महत्त्वपूर्ण है। संस्कृति आज की दुनिया में एक राजनीतिक अस्त्र के रूप में उभर रही है।, न्यस्त स्वार्थ, जिसका उपयोग खुलकर अपने उद्देश्यों के लिए कर रहे हैं। उन पर रोक लग सकती है, यदि हम निष्ठा और प्रतिबद्धता से भारतीयता की तलाश करें। जाहिर है, निष्ठा ओर प्रतिबद्धता से भारतीयता की खोज नए सिरे से अपेक्षित है।[1]

सर्वोच्च न्यायालय ने देश और युवावों के हितों को ध्यान में रखते हुए मूल्य आधारित शिक्षा की आवश्यकता पर बल देते हुए सन् 2002 में 'अरूणा राय व अन्य बनाम भारत सरकार व अन्य' मुकद्दमें में निर्णय देते हुए कहा ''इससे कोई इंकार नहीं कर सकता कि पिछले पांच दशकों में हर स्तर पर सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का निरंतर ह्यास हुआ है और स्वार्थपरता में वृद्धि हुई है। मूल्यों पर आधारित सामाजिक प्रणाली की पूरी तरह उपेक्षा करते हुए हम भौतिकवादी समाज में बदलते जा रहे हैं। कोई इससे भी इंकार नहीं कर सकता कि 'सेक्यूलर' समाज में नैतिक मूल्यों का महत्त्व सर्वोपरि है। जिस समाज में कोई नैतिक मूल्य न हो, वहाँ न सेक्यूलर बचेगा, न सामाजिक व्यवस्था। नैतिक मूल्यों के बिना न सेक्यूलर समाज, न लोकतंत्र बचेगा। जैसा एस.बी. चव्हाण समिति ने नोट किया कि व्यक्ति में गुणों को ही मूल्य कहते हैं, और ये क्षीण होने लगें तो परिवार, समाज और देश के संपूर्ण बिखराव का कारण बन जाएंगे। जिस समाज में धन, सत्ता और पद के लिए सामाजिक और नैतिक मूल्य निरंतर खत्म हो रहे हों, क्या वहां शुरू से ही ठोस सामाजिक आधार नहीं होना चाहिए ताकि आदमी वयस्क होकर हर तरह की उग्रता, कुविचार, हिंसा, बेईमानी, भ्रष्टाचार और शोषण के खिलाफ मिल कर संघर्ष कर सकें।

रामकथा पुरातन होते हुए भी चिरनूतन है। प्रत्येक व्यक्ति को श्रेष्ठ जीवन की प्रेरणा प्रदान करना ही इसका उद्देश्य है। रामचरितमानस से हम अपनी वर्तमान चुनौतियों का समाधान पा सकते हैं। भारतीय संस्कृति परिवारों की संस्कृति है। तमाम स्वार्थलिप्सा और भौतिकता के बावजूद रिश्तों का सम्मान बहुत आवश्यक है। बड़ों के प्रति सम्मान, छोटों के प्रति उदारता और भ्रातृत्व भाव हमारे परिवारों का केंद्र रहा है। जिसके स्वरूप में आज परिवर्तन आया है। प्रेरणा और अदम्य साहस का परिचय कराते हुए तुलसीदास

किष्किन्धाकाण्ड में लिखते हैं –

''एक बार कैसेहुं सुधि जानौं।
कालहु जीति निमिष महुं आनौं।।''
रामचरितमानस, तुलसीदास

राम का यह अटल विश्वास हताशा के क्षणों में पूरी मानव जाति के लिए प्रकाश–स्तंभ है। गला काट प्रतिस्पर्धा, रोजाना की चुनौतियाँ, सहारे की कमी, विश्वास का अभाव इस दौर की बड़ी चुनौतियां हैं। इन्हीं सबसे हार कर व्यक्ति खुद को छोटा या असहाय महसूस करता है। लेकिन ऐसे में भी धैर्य के साथ साहस का प्रयोग करके जीवन में सफलता पाई जा सकती है। हमेशा सत्य के लिए संघर्ष करना पड़ता है लेकिन मौन हो जाना या कार्य को छोड़ देना समस्या का हल नहीं है – **''निशिचर हीन करउं महि भुज उठाइ पन कीन्ह।''**

राम अपने भुज बल से किष्किन्धा और लंका पर विजय प्राप्त करते हैं, किंतु उन्हें अपने अधीन नहीं रखते हैं। सोने की लंका का राज्य विभीषण को उस स्थिति में देते हैं, जब वे स्वयं वनवासी हैं, फलों के भोजन पर रह रहे हैं, घास–फूस की शैय्या पर शयन करते हैं। राज्य के प्रति निर्लिप्त, एकदम निस्पृह। सुख–साधन जुटाने की अंधी दौड़ में आज बहुत कुछ पाने के बावजूद लगभग हर कोई दुखी और अधूरा महसूस कर रहा है।

भारतीय दर्शन और जन सम्मत की दृष्टि से मानवीय मूल्यों से ओतप्रोत जीवन को ही सफलता और प्रतिष्ठा का पर्याय माना गया है। यही व्यक्तित्व मूल्यांकन की कसौटी भी है। वर्तमान में विज्ञान और सूचना तकनीकी के बढ़ते प्रवाह, पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण तथा संस्कार प्रधान शिक्षा के अभाव के कारण न केवल भारतीय जनमानस की सोच में बदलाव आया है बल्कि व्यक्तित्व मूल्यांकन तथा प्रतिष्ठा के पैमाने भी बदल गए हैं।

पहले व्यक्तित्व मूल्यांकन का पैमाना समाज निर्धारित करता था और प्रतिष्ठा भी समाज निर्गत थी किंतु आज दोनों ही चीजें व्यक्तिगत होती जा रही हैं। इसके साथ ही व्यक्तित्व मूल्यांकन और प्रतिष्ठा के नए प्रतिमान भी विकसित और परिभाषित होते जा रहे हैं, जिससे व्यक्तिगत निर्गत और समाज निर्गत मूल्यांकन तथा प्रतिष्ठा में अंतर्द्वंद्व की स्थिति निर्मित हो रही है। इस विरोधाभास के कारण मूल्यों का हनन तेजी के साथ हुआ, जिसने समाज में अनेक समस्याओं को जन्म दिया। जनता द्वारा धन के प्रभाव में आकर दी जाने वाली सस्ती सामाजिक प्रतिष्ठा ने लोकप्रियता के लिए लालायित लोगों को कर्त्तव्यविहीन अध आर्थिकोपार्जन की ओर प्रेरित किया। धन प्रतिष्ठा का उच्चतम आदर्श बन बैठा, जिसे रातोरात पाने के लिए हर कोई व्यग्र हो उठा। इस प्रकार बंगला, मोटर–गाड़ी, नौकर–चाकर, कीमती कपड़े, मनचाहा भोजन एवं बैंक एकाउंट को सर्वोपरि माना जाने लगा। इस महत्त्वाकांक्षा ने व्यक्ति को सुख–सुविधाएँ तो उपलब्ध करा दीं परंतु उसे मूल्यों से च्युत कर दिया, जिसका प्रभाव व्यक्ति के समग्र व्यक्तित्व पर पड़ा है। वह अंदर से संवेदनशून्य और कृतित्रमता का जामा पहनकर जीने वाला मात्र एक मूल्यहीन प्राणी बनकर रह गया है।

मूल्हीनता ने अनेक सामाजिक समस्याओं को जन्म दिया है। भौतिक विकास की द्रुतगामी दौड़ में व्यक्ति नैतिकता से बहुत दूर हो गया है। बढ़ती महत्त्वाकांक्षाएँ तथा बहुद्देशीय जीवन के कारण आज मनुष्य कथनी और करनी के संबंध में अपनाए जाने वाले दोहरे मापदंडों में जीने का आदी होता जा रहा है। यही कारण है कि आज का मानव मानसिक पीड़ाओं, वैयक्तिक कुंठाओं, अंतर्द्वंद्व एवं आर्थिक विषमताओं से संत्रस्त है।

स्वामी विवेकानंद ने मानव निर्माण की प्रक्रिया पर बल देते हुए व्यावहारिक दर्शन का समर्थन किया है। इस संदर्भ में प्रसिद्ध **मनोवैज्ञानिक जीन प्याजे** ने भी कहा है कि **''व्यवहार हमारे ज्ञान का आधार बिन्दु है। मूल्यों का विकास भी इसी पर निर्भर करता है।''**

आज मानव विविध सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रतिमानों के बीच जीवन व्यतीत कर रहा है। वे प्रतिमान जितने संघर्ष भरे हैं, उतने ही चुनौतीपूर्ण भी हैं। ये निम्न चुनौतियाँ हैं जिनके कारण जीवन मूल्यों का ह्रास हुआ है –

- भौतिक विकास और आधुनिकता की भ्रामक धारणा के कारण नैतिक एवं आध्यात्मिक भावना का क्रमशः नाश हो रहा है।
- तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या के कारण असंतुलन की स्थिति।
- पारिवारिक संकल्पना का बदलता स्वरूप भावनात्मक संरक्षा का अभाव।

- विज्ञान एवं सूचना–तकनीकी का द्रुतगामी विकास तथा मनोवृत्तियों में परिवर्तन।
- पर्यावरण संकट के कारण नैसर्गिक संसाधनों की बढ़ती कमी।
- संचार साधनों का बढ़ता प्रभाव तथा जीवन शैली के प्रति बदलता नजरिया।
- शिक्षा का व्यावसायीकरण तथा बदलते मूल्य।
- सामाजिक–राजनीतिक जीवन में व्याप्त विघटन की प्रवृत्ति का नई पीढ़ी पर प्रतिकूल प्रभाव।
- यौनाचार, बढ़ते अपराध एवं भ्रष्टाचार की तेजी से पनपती विषबेल।
- व्यक्तित्व मूल्यांकन की कसौटी तथा प्रतिष्ठा के बदलते प्रतिमान।
- ज्ञान के बढ़ते क्षितिज तथा भौतिकवादी दृष्टिकोण के कारण जीवन में आस्था व श्रद्धा की अपेक्षा तर्क एवं बौद्धिकता का बोलबाला।[2]

उपर्युक्त चुनौतियों के कारण जिन नैतिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों का हनन हुआ है, उसके कारण जीवन अत्यंत कठिन हो गया है।

उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में कई ऐसे समाजसुधारक, समाजसेवी, संत व मनीषी, दार्शनिक, चिंतक, शिक्षाशास्त्री, साहित्यकार तथा राजनेता हुए जिन्होंने अपने–अपने क्षेत्र में निष्ठापूर्वक दायित्वों का निर्वहन करते हुए समाज में उन मानवीय मूल्यों की पुनर्प्रतिष्ठा की, जो भारतीय संस्कृति के संवाहक थे। संत कबीर, तुलसीदास, राजाराममोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती, महात्मा ज्योतिबा फूले, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, महर्षि अरविन्द, महात्मा गांधी, गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर, महामना मदनमोहन मालवीय, प्रेमचंद्र मैथलीशरण गुप्त, डॉ. राधाकृष्णनन, राजगोपालाचारी, पं. रामचंद्र शुक्ल, माखनलाल चतुर्वेदी आदि अनेक नाम हैं, जिन्होंने अपने प्रेरणास्पद व्यक्तित्व एवं आचार–विचार एवं साहित्य से मानवीय मूल्यों के महत्त्व को प्रतिपादित करने का सार्थक प्रयास किया।

पश्चिम ने आइंस्टाइन ने के सिद्धांतों का अणु बम बनाने या अंतरिक्ष–यात्रा में तो उपयोग किया है परंतु अपने को, अपने भाव–जगत् को, समझने में नहीं। क्या आइंस्टाइन ने यह नहीं सिद्ध किया कि चेतना पदार्थ में और पदार्थ चेतना में परिवर्तित होता रहता है। जिस रोज पश्चिम आइंस्टाइन की मूल स्थापना के रहस्य को ठीक–ठीक हृदंगम कर लेता उस रोज उसे संस्कृति, काव्य और धर्म को जीवन के लिए प्रासंगिकता का भी बोध हो जाएगा। काव्य, कला और धर्म के बिना मानवीय भावों का साधारणीकरण हो ही नहीं सकता तथा इसके बिना जो संस्कति विकसित होगी उसमें भावों का संस्कार नहीं हो पाएगा क्योंकि ऐसा मनुष्य सभ्य दिखकर भी पशुवत् आचरण करेगा।[3]

परिवार को बालक के संस्कार निर्माण की प्रथम पाठशाला माना गया है। क्योंकि परिवार अर्थात् कुटुंब एक महाभाव है यह महाभाव मनुष्य को उसकी विराट सत्ता के साथ जोड़ता है। उसकी परिधि का विस्तार करता है।

उससे एक से बहुत होने की आकांक्षा को दृढ़ करता है। विधाता की सृष्टि का मूल भाव रहा – एकोऽहं बहुस्याम्। परिवार में बालक की प्रारंभिक संस्कारों के बीजारोपण करने का कार्य माता–पिता अथवा अभिभावक ही करते हैं, जो शनैः–शनैः अच्छी आदतों के रूप में विकसित होते हुए जीवन–मूल्यों का रूप ले लेते हैं। इसलिए व्यक्ति के जीवन–मूल्यों के स्रोत होते हैं – उसकी अपनी संस्कृति, उसके अपने संस्कार एवं अपना वंशानुक्रम। यहीं से चरित्र निर्माण की प्रक्रिया भी शुरू होती है। स्वामी विवेकानंद ने इस संदर्भ में विचार उल्लेखनीय है। स्वामी जी के अनुसार ''व्यक्ति का चरित्र और कुछ नहीं, उसकी आदतों और वृत्तियों का सार भर है। हमारी आदतें और वृत्तियाँ ही चरित्र का स्वरूप निर्धारित करती है। वृत्तियों की श्रेष्ठता और निकृष्ठता के अनुरूप ही चरित्र को सबलता और निर्बलता सुनिश्चित होती है। श्रेष्ठ चिंतन और आचरण के सतत् अभ्यास द्वारा प्रवृत्तियों का शोधन होता है और चरित्र गठन का कार्य मनोवांछित दिशा में आगे बढ़ता है।''

उदारवादी वैश्वीकरण के इस दौर में इस वैश्विक संस्कृति का निरंतर विस्तार हो रहा है। वैश्वीकरण के आर्थिक प्रभावों को लेकर मतभेद हो सकता है लेकिन विभिन्न संस्कृतियों पर इसके विलयनकारी तथा विघटनकारी प्रभावों को नकारना असंभव है। भारत की संस्कृति पर पाश्चात्य संस्कृति के प्रभावों के नकारात्मक तथा साकारात्मक पहलू दोनों ही हैं। लेकिन जो चिंता का कारण है वह भारत के धूमिल हो रही सांस्कृतिक अस्मिता। भारत का अभिजात्य वर्ग विदेशी संस्कृति तेजी से अपना रहा है तथा सांस्कृतिक आदर्शों में पश्चिमी सांस्कृतिक मूल्य शुमार हो रहे हैं। प्रवृत्ति भारतीयता में संशोधन या सुधार की नहीं है बल्कि पश्चिमी मूल्यों का अंधानुकरण है। भारतीय

पुनर्जागरण काल में भी पश्चिमी मूल्यों से प्रेरणा ली गई थी लेकिन भारतीय मूल्यों को नकार कर नहीं। यहा संस्कृति से जुड़े। एक बहुत महत्त्वपूर्ण मुद्दा विचारणीय है वह है भाषा का। भाषा किसी भी सभ्यता या समाज की अस्मिता तथा संस्कृति की वाहिका होती है। आज इस वैश्वीकरण के दौर में विश्व की अन्य भाषाओं के साथ भारती का भी भविष्य सोचनीय है।

आर्थिक विकास के द्वारा ही भाषा तथा संस्कृति भी सुरक्षित रखी जा सकती है। विपन्नता की स्थिति में संस्कृति कभी भी फल–फूल नहीं सकती है। उदारवाद तथा वैश्वीकरण भारत को अवसर प्रदान कर रहा है कि भारत अपनी काबलियत विश्व में साबित करे। आवश्यकता उन अवसरों की है जिससे जन–जन में छिपी उद्यमिता तथा सृजनात्मक क्षमताएँ विकसित हो सकें। इसका महत्त्व आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा अंतरराष्ट्रीय है। यह सामाजिक कल्याण के लिए आवश्यक तत्त्व है।

आज भौतिकता के प्रतिस्पर्धात्मक युग में सबसे अधिक दबाव युवा पीढ़ी पर है जिसे न केवल विधिवत शिक्षा प्राप्त करनी है अपितु जीवन के प्रति सही दृष्टिकोण अपना कर आगे बढ़ना है। अतः आवश्यक हो जाता है व्यापक एवं समग्र दृष्टिकोण बनाकर संवेदनायुक्त भावनाओं को जीवन में अपनाने की, जो हर युवा को समाज में उभरती समस्याओं एवं चुनौतियों के विषय में सोचने के लिए विवश कर सके। आज समाज में जो चुनौतियाँ विध्वंसात्मक तत्त्वों के रूप में व्याप्त हैं, इसके कारण न केवल सामाजिक असुरक्षा एवं अशांति का वातावरण उत्पन्न हुआ है। बल्कि भारतीय संस्कृति का अधोपतन भी हुआ है। अतः युगीन आवश्यकताओं के अनुरूप वैश्विक शांति एवं वातावरण के संरक्षण के लिए मानव मूल्यों के पुनः प्रतिष्ठा की महती आवश्यकता है, ताकि नई पीढ़ी को भारतीय संस्कृति के उन्नयन के लिए तैयार किया जा सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. प्रो. श्यामाचरण दुबे 5 समय और संस्कृति : भारतीयता की तलाश।
2. रचना पत्रिका लेख समकालीन चुनौतियाँ और मूल्यों का संकट – डॉ. आशा शर्मा, अंक 60–61, सन् 2006, पृ. 41
3. सिद्धेश्वर प्रसाद –विश्व आलोचना को आचार्य शुक्ल की देन , पृ. 32, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली 1986
4. महाभारत अनुशासन पर्व
5. यजुर्वेद–26 / 2
6. श्रीमद्भगवद्गीता–12 / 4
7. श्री राम चरित मानस, उत्तर काण्ड–29 / 3
8. अथर्वेद–19 / 62 / 1

Unnati International Journal of Multidisciplinary Scientific Research, U.I.J.M.S.R.
Peer Reviewed - Refereed Journal & Impact factor - 3.2, Open Access, Double Blind, Monthly Online Journal
ISSN : 2581-8872, Vol. : 1, No. : 10, Nov. - 2019
2019

दक्षिण पूर्व कोयला प्रक्षेत्र कोरबा में श्रमिकों में मनोबल और अनुशासन

डॉ. प्रतिमा बैस
विभागाध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग, डॉ.सी.वी. रमन विश्वविद्यालय कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)
प्रो. आशा राय
अर्थशास्त्र विभाग, डी.पी. विप्र महाविद्यालय बिलासपुर (छ.ग.)

साउथ ईस्टर्न कोल फील्ड्स लिमिटेड (दक्षिण पूर्व कोयला प्रक्षेत्र) की स्थापना 28 नवंबर 1985 को हुआ। यह अपना कार्य 1 अप्रैल 1986 को विधिवत् रूप से आरंभ किया। इसके अन्तर्गत भूमिगत एवं पोखरिया दोनों किस्मों के खाने है। जहां श्रमिक कार्यरत् है। यह उत्पादन क्षमता और भौगोलिक दृष्टि से सबसे बड़ी कम्पनी हैं। 18 मार्च 1992 को इस कम्पनी का विभाजन कर (एम.सी.एल.) नामक नई कम्पनी का निर्माण किया गया है।

दक्षिण पूर्व कोयला प्रक्षेत्र कोरबा, औद्योगिक नगर के नाम से जाना जाता है, जो अनेक औद्योगिक संभावनाओं को समाविष्ट किया हुआ है। उद्योग स्थापित होने के लिए आर्थिक एवं गैर आर्थिक जितनी सुविधाएँ होनी चाहिए, इस संस्थान को प्राप्त हुए है।

किसी राष्ट्र की भावी सम्पन्नता बहुत सीमा तक उस देश के विभिन्न उद्योगों में काम करने वाले श्रमिकों से संबंध रखने वाली समस्याओं के सही हल पर निर्भर करता है। औद्योगिक श्रमिक एक ऐसी सजीव शक्ति है, बन गई है जिसका प्रयोग राष्ट्र के रचनात्मक उद्देश्यों को पूरा करने के लिए किया जा सकता है। श्रमिक एवं उत्पादन का घनिष्ठ संबंध है। उत्पादकता एवं राष्ट्रीय आय एक दूसरे के पर्यायवाची है, किन्तु श्रमिकों को दी जाने वाली सुविधाओं के साथ उसके मनोबल और संस्थान की अनुशासन व्यवस्था श्रमिकों के उत्पादकता को भी प्रभावित करती है।

श्रमिकों में मनोबल और अनुशासन :– मनोबल का आशय आंतरिक बल से है। इस शब्द का प्रयोग विशेषतः सन् 1962 में भारत पर चीनी आक्रमण के समय किया गया था, जब भारतीय नेता सीमाओं पर तैनात हमारे सैनिको को देखकर लौटते थे तो वे प्रायः यह कहा करते थे "कि भारतीय सैनिको को मनोबल ऊँचा है, अर्थात वे अपने अधिकारियों के आदेशों को प्रसन्नता के साथ पालन करते थे।

इसी प्रकार किसी भी औद्योगिक संस्था में प्रवेश करने पर यह अनुभव हो कि समस्त कर्मचारी/श्रमिक अपने कर्त्तव्य का निष्पादन करने में व्यस्त है, वे समय पर आते है तथा कार्य के घण्टों मे बराबर काम में लगे रहते है। उच्च अधिकारियों के निर्देशों का पालन करते है, तथा संस्था के प्रति ईमानदार होते है। उत्पादन में रूकावट आने पर उसे तत्काल दूर करने की चेष्टा करते है। इसके विपरीत अधिकारियों के आदेशों का पालन नहीं करते। समय पर कारखाना नही आते अपने अधिकारियों से अशिष्ट व्यवहार करते है, एवं उत्पादन कार्य में रूकावट आने पर उसे शीघ्र दूर करने का प्रयास नहीं करते तो यही कहा जायेगा कि कर्मचारियों का मनोबल संस्था के प्रति ठीक नहीं है। वास्तव में किसी संस्था में काम करने वाले व्यक्तियों की अपेक्षा बाहरी व्यक्ति उनके कर्मचारियों के मनोबल की स्थिति का अधिक सही अनुमान लगा सकते है।

परिभाषाएँ :– "मनोबल वह मानसिक दशा है जो उत्साह भावना, आशा, विश्वास जैसे मानसिक घटकों पर निर्भर करती है।" (वेन्सटर)

"किसी आधार पर आपस में संबंधित व्यक्तियो के सहकारी दृष्टिकोण अथवा सामूहिक मानसिक स्वास्थ्य को मनोबल कहते है।" (विलियम आर स्प्रीगल)

स्पष्टतः मनोबल उस संपूर्ण वातावरण या दृष्टिकोण को प्रकट करता है जो किसी वर्ग समाज अथवा समुदाय के सदस्यों से प्रचलित है। इसके दो पहलू हो सकते है ऊँचा, नीचा यदि किसी संस्था के कर्मचारी अच्छे प्रसन्न आशावादी एवं मित्रवत प्रतीत हो तो उसका मनोबल "ऊँचा" कहा जावेगा, किन्तु यदि वे झगड़ालू, आलोचक एवं धैर्य का अभाव हो तो उसका मनोबल "नीचा" कहा जायेगा। ऊँचे मनोबल उस मानसिक दृष्टिकोण का द्योतक है जो कर्मचारी को यह अनुभव कराता है कि, उसकी आवश्यकताओं की अधिकतम संतुष्टि संस्था के लक्ष्य की पूर्ति में निहित है।"

एस.ई.सी.एल. कोरबा कोयला प्रक्षेत्र में कार्यरत् श्रमिकों का खदानों के प्रति मनोबल अच्छा है। सभी कर्मचारी एवं श्रमिक संस्था के हितार्थ/लाभार्थ प्रयासरत् रहते है। कर्मचारियों एवं श्रमिक कभी भी अनावश्यक अवकाश नहीं लेते तथा कार्य के दौरान आलस्यता नहीं दिखाते। सभी कर्मचारियों में उत्साह और लगन की भावना

है, सभी कर्मचारी यह चाहते है कि, उद्योग का उत्तरोत्तर विकास हो जिससे कि स्वंय का विकास हो सके। कर्मचारी/श्रमिक अपने उत्तरदायित्वों को पूरा करने में संलग्न रहते है इस कारण निरीक्षण करने की भी विशेष आवश्यकता नहीं होती।

एस.ई.सी.एल. कोरबा कोयला प्रक्षेत्र में कार्यरत् श्रमिकों के मनोबल को जानने के लिए स्तरीय देव निदर्शन (Stratified Random Sampling) के आधार पर 400 श्रमिकों एवं कर्मचारियों से प्रत्यक्ष सम्पर्क कर प्रश्नावली अनुसूची का प्रयोग कर उससे संबंधित विचार पूछे गए।

A- स्वंय के नौकरी (JOB) में कर्मचारियों के विचार :–

क्रमांक	विचार पसंद करते है, संतुष्ट है।	आवृत्ति	प्रतिशत
01	पसन्द करते है, संतुष्ट है	320	80
02	उपयुक्त नहीं है	50	12.5
03	पसन्द नही करते है	30	7.5
04	योग	400	100

स्त्रोत :– साक्षात्कार प्रश्नावली

B- विभाग में अनुशाासन के संबंध में विचार :–

क्रमांक	विचार	आवृत्ति	प्रतिशत
01	न्यायपूर्ण है	250	62.5
02	कठोर अनुशासन	80	20
03	बहुत अच्छा है	40	10
04	खराब है	30	7.5
	योग	400	100

स्त्रोत :– साक्षात्कार प्रश्नावली

C- कार्य के बदले में प्राप्त मजदूरी के संबंध में विचार :–

क्रमांक	विचार	आवृत्ति	प्रतिशत
01	मजदूरी उचित है	300	75
02	मजदूरी कम है	70	17.5
03	सामान्य है	30	7.5
	योग	400	100

स्त्रोत :– साक्षात्कार प्रश्नावली

D- कारखाना से संतुष्टि के संबंध में :–

क्रमांक	विचार	आवृत्ति	प्रतिशत
01	संतुष्ट है	250	62.5
02	असंतुष्ट है	80	20
03	संतुष्ट रहना पड़ता है	70	17.5
	योग	400	100

स्त्रोत :– साक्षात्कार प्रश्नावली

E- स्वंय का कम्पनी के विकास के सम्बन्ध में विचार :–

क्रमांक	विचार	आवृत्ति	प्रतिशत
01	कारखाना के साथ स्वंय का	380	95
02	अपना स्वंय का	20	05
	योग	400	100

उपर्युक्त सर्वेक्षण से यह ज्ञात होता है कि कारखाना के अधिकतर कर्मचारियों/श्रमिकों का मनोबल संस्था के प्रति अच्छा है, कुछ मात्रा में, कुछ तथ्यों से संतुष्ट नहीं है जो कि एक अपवाद स्वरूप है। लगभग 90 प्रतिशत कर्मचारियों का मनोबल संस्था के प्रति ऊँचा है, तथा कुछ ही श्रमिकों का मनोबल सामान्य है।

निष्कर्ष :– निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि एस.ई.सी. एल. कोयला प्रक्षेत्र कोरबा में कर्मचारियों का मनोबल ऊँचा है जो कि एक कारखाने के उत्तरोत्तर विकास में सहायक है। जो किसी भी कारखाने में यह होना ही चाहिए।

अनुशासन :– अनुशासन से अभिप्राय देश, धर्म, समाज व सरकार द्वारा निर्धारित परम्पराओं, नियम व कानून के अनुसार आचरण करने से है।

अनुशासन का तात्पर्य कर्मचारी द्वारा कम्पनी के नियमों और कार्य आदेशों का पालन की तत्परता से है। (जूसियस)

सामान्यतः अनुशासन के उद्देश्य संगठन के निर्वाध कार्य संचालन के लिए समन्वय को सुगम बनाना, सदस्यों में सहनशीलता का विकास करना, उत्तरदायित्व सौपना और लेना, कार्यकुशलता एवं मनोबल को मानवीय संबंध के प्रति आदर का वातावरण तैयार करना।

"एस.ई.सी.एल. कोरबा कोयला प्रक्षेत्र में अनुशासन" :– अनुशासन व्यवस्था को जानने हेतु श्रमिकों, श्रम संघो एवं नौकरशाही के अधिकारियों के प्रत्यक्ष चच्र का आश्रय लिया गया। इससे कुछ तथ्य सामने आए, जिन्हे इस प्रकार रखा जा सकता है :–

01– श्रमिकों की शिकायते एवं उनकी मांगो को पूरा नहीं करने पर अनुशासनहीनता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इसके लिए श्रमिक नौकरशाही की विलम्बकारी प्रवृत्ति को उत्तरदायी मानते है।

02– कर्मचारियों की व्यक्तिगत् समस्याये – आवास समस्या, बिजली, पानी के प्रति उपेक्षापूर्ण व्यवहार भी सामने आता है।

03– कुछ व्यक्तियों को दण्ड देना तो कुछ के प्रति उदारता भाव रखना। यह तथ्य सभी संस्थाओं में पाया जाता है। कोरबा कोयला प्रक्षेत्र भी इससे अछूता नहीं है।

04– अधिकांशतः यहा पर उत्पन्न होने वाला अनुशासनहीनता का मुख्य कारण आंतरिक ही होता है। कुछ श्रमिकों के अनुसार श्रमिक संघो एवं नौकरशाही के बीच आंतरिक सांठ–गांठ के कारण हमारे सार्वजनिक कार्य भी पूरे नहीं हो पाते।

"प्रभावपूर्ण अनुशासन के लिए सुझाव :– मैने प्रश्नावली अनुसूची लेकर स्वंय श्रमिकों से प्रत्यक्ष रूप से चर्चा किया, अवलोकन किया। इस आधार पर कोरबा कोयला प्रक्षेत्र में अनुशासन व्यवस्था को बनाये रखने के लिए निम्न सुझाव दिये जा सकते है :–

01– श्रमिकों की शिकायतों एवं मांगो पर आवश्यक विचार विमर्श किया जाना चाहिए तथा उन्हें प्राथमिकता के आधार पर यथासंभव पूरा करना चाहिए।

02– प्रबंधक को कर्मचारियों के तथा श्रमिक के निकट सम्पर्क में होना चाहिए।

03– श्रमिकों को कारखाना के नियमों, कानूनो तथा परम्पराओं से पूर्णतः अवगत करा देना चाहिए, एवं निर्धारित दण्ड व्यवस्था का भी उन्हें ज्ञात होना चाहिए।

04– कारखाना के लाभ–हानि तथा लक्ष्य एवं उद्देश्यों की जानकारी प्रत्येक श्रमिक एवं समूह को दी जानी चाहिए।

05– प्रबंधकों को इस बात की भली–भांति समझना होगा कि श्रमिक उत्पादन का सजीव साधन है, जो उत्पादन में सक्रिय भूमिका निर्वहन करता है। अतएव उन्हें एक वस्तु न समझे वरन् उद्योग का एक महत्वपूर्ण अंग समझे।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

01– भगोलवाल, टी.एन. (1995) – "श्रम अर्थशास्त्र एवं औद्योगिक संबंध" साहित्य भवन आगरा

02– पाटनी, आर.एल. (1983) – "सेवीवर्गीय प्रबंध एवं औद्योगिक संबंध" साहित्य भवन आगरा

03– शर्मा, रमेश चन्द्र (1984–85) – "श्रम समस्याओं एवं समाज कल्याण" राजीव प्रकाशन मेरठ

04– सिंह, एस.डी. (1988) – "वैज्ञानिक सामाजिक अनुसंधान एवं सर्वेक्षण के मूल तत्व" इंदौर कमल प्रकाशन

05– सिन्हा, वी.सी. (1990) – "औद्योगिक अर्थशास्त्र" प्रकाशन लोक भारती इलाहाबाद

06– खान सुरक्षा, धनवाद विहार –

07– साक्षात्कार अनुसूची –

Unnati International Journal of Multidisciplinary Scientific Research, U.I.J.M.S.R.
Peer Reviewed - Refereed Journal & Impact factor - 3.2, Open Access, Double Blind, Monthly Online Journal
ISSN : 2581-8872, Vol. : 1, No. : 10, Nov. - 2019
2019

यज्ञ विज्ञान में ज्योतिष का वैशिष्ट्य

डॉ. मानवेन्द्र पाण्डेय
आचार्य एवं अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग, म.म.यो.वै.वि.वि. करौंदी, कटनी (म.प्र.)

'वेद एव सर्वस्वम्' वेद ही सब कुछ है, विश्व ब्रह्माण्ड का समस्त ज्ञान वेद में सन्निहित है। वेद चार हैं चारों वेदों की 1131 शाखायें हैं जिसमें कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड तीन भाग हैं, इनके समस्त मन्त्रों की संख्या एक लाख है।

लक्षं तु वेदाश्चत्वारः लक्षं भारतमेव च।

वेदों में कर्मकाण्ड की प्रधानता है कर्मकाण्ड भाग में केवल यज्ञों का ही प्रधान्य है।

देवानां द्रव्यहविशां ऋक्सामयजुशां तथा।
ऋत्विजां दक्षिणानां च संयोगो यज्ञ उच्यते।।

देवता, हवनीय द्रव्य, वेद मंत्र ऋत्विज और दक्षिणा इन पांचों का संयोग जिस कर्म विशेष में हो वह यज्ञ कहलाता है। अतः वेदों का मुख्य विशय यज्ञ है। यज्ञ के द्वारा ही ब्रह्मा ने सम्पूर्ण विश्व–ब्रह्माण्ड की सृष्टि की। इसीलिये कहा कि–

''सर्वं यज्ञमयं जगत्''

अर्थात् यह सम्पूर्ण संसार ही यज्ञमय है।

ब्रह्मा को इस कल्प के आरम्भ से चराचर सृष्टि की रचना में सैतालिस हजार चार सौ दिव्य वर्ष का समय देना पड़ा। सूर्यसिद्धान्त में सृष्टि क्रम विस्तृत रूप से वर्णित है।

ग्रहर्क्षदेवदैत्यादि सृजतोऽस्य चराचरम्।
कृताद्रिवेदादिव्याब्दाः शतघ्नावेधसो गताः।।

इस वाराह कल्प के आरम्भ से अब तक लगभभ दो करोड़ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं इसे आधुनिक वैज्ञानिक भी मानते हैं।

वेद के छः अंग है– शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, ज्योतिष और छन्द। जैसा कि भास्कराचार्य जी ने लिखा है–

शब्दशास्त्रं मुखं ज्योतिषं चक्षुशी श्रौत्रमुक्तं निरुक्तं च कल्पः करौ।
या तु शिक्षास्य वेदस्य सा नासिका पादपद्मद्वयं छन्दआद्यैर्बुधैः।।

इन छः अंगों में भी ज्योतिष शास्त्र वेद–पुरुष का नेत्र होने के कारण वेद का मुख्य अंग है। जैसा कि वशिष्ठ जी ने कहा है–

कतुकियार्थं श्रुतयः प्रवृत्ताः कालाश्रयास्ते कतवो निरुक्ताः।
शास्त्रादमुस्मात्किल कालबोधो वेदांगतामुश्य ततः प्रसिद्धा।।

वेद यज्ञों के करने का विधान बताते हैं, यज्ञ काल (समय) के अधीन हैं, अर्थात् यज्ञों का करना समय पर कहा गया है। और इस ज्योतिष शास्त्र से काल का ज्ञान होता है।

सिद्धान्तराज में भी वेद के विषय में लिखा है कि–

''वेदा यज्ञप्रवृत्ता यजनमथ ककुप्कालयोर्निश्चयेन।
दिक्कालौ भग्रहेभ्योऽनुमितपरिमिती ते पुनर्गोलसंस्थाः।।

वेद यज्ञों की प्रवृत्ति के लिए है यज्ञ दिक् देश और काल के अधीन है दिक्, देश और काल का ज्ञान नक्षत्र और ग्रहों से होता है। नक्षत्र और ग्रह ज्योतिष शास्त्र के द्वारा जाने जाते हैं।

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयंकर्मबन्धनः।।

गीता के अनुसार कर्तव्य पालन के लिए किये जाने वाला कार्य यज्ञ है यज्ञ के अन्तर्गत यज्ञ, दान, तप, होम, व्रत, वेदाध्ययन समस्त शारीरिक, व्यवहारिक एवं पारमार्थिक कियाओं का नाम यज्ञ है। नित्य संध्या, तर्पण, बलिवै यदेव, देवपूजा, अतिथि पूजा, व्रत, जप, तप, अध्ययनाध्यापन, कथाश्रवण, तीर्थभ्रमण, उपनयन, विवाह आदि अड़तालीस संस्कार पुत्रेष्ठि, राज्य प्राप्ति आदि काम्य कर्म सब यज्ञ का स्वरूप है। द्रव्य यज्ञ, तपो यज्ञ, योग यज्ञ, स्वाध्याय यज्ञ आदि सब यज्ञ का ही रूप है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में मनष्य के धर्म समन्वित सभी कर्मों को यज्ञ कहा है।

गतिशील सृष्टि– चक्र में यदि एक व्यक्ति भी अपने कर्तव्य कर्म से विमुख होता है तो उसका विपरीत प्रभाव सम्पूर्ण सृष्टि पर पड़ने लगता है। किसी भी

व्यक्ति के पास जो शरीर योग्यता, पद, अधिकार, विद्या, बल, प्राप्त है वह सब मिला हुआ है, सदा साथ रहने वाला नहीं है। यज्ञ शब्द मुख्य रूप से आहुति देने की क्रिया का वाचक है, जबकि गीता में यज्ञ शब्द सम्पूर्ण कर्तव्य–कर्मों का वाचक है, यज्ञ में त्याग की ही मुख्यता है।

तप यज्ञ में– सुख भोग का त्याग।

दान यज्ञ में– वस्तु का त्याग।

कर्तव्य कर्म करने में– स्वार्थ और आराम का त्याग। यज्ञ किसी भी प्रकार का हो क्रिया जन्य होता है।

वेदों का मुख्य विषय यज्ञ है ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है

''यज्ञोऽपि तस्मै जनतायै कल्पति'' (1–2–3)

अर्थात् यज्ञ जनमानस के कल्याण के लिए किया जाता है।

''यो यदिच्छति तस्यतत्''

यज्ञ से जो जिस वस्तु की प्राप्ति करना चाहता है वह उसे प्राप्त हो जाती है।

यज्ञ अनेक प्रकार के होते हैं अनेक प्रकार के यज्ञों में अनेक प्रकार के वेद मंत्र से हवन होता है।

यज्ञ एक ठोस वैज्ञानिक प्रक्रिया है जो हमारे जीवन का अभिन्न अंग है, स्वामी महर्षि दयानन्द सरस्वती ने कहा था कि यदि पर्यावरण की शुद्धि एवं सुखों की वृद्धि चाहते हो तो नित्य प्रातः सायं प्रत्येक घर में हवन यज्ञ होना चाहिये क्योंकि ''**यज्ञ वैविष्णुः**'' अर्थात् यज्ञ विष्णु का स्वरूप है और विष्णु व्यापक है। यज्ञ की परम्परा सृष्टि के साथ चलती है। यज्ञ से मानव के भौतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक एवं व्यक्तिगत उद्देश्य पूर्ण होते हैं। महाराज मनु के अनुसार यज्ञ–व्रतादि से मानव शरीर व आत्मा को ब्रह्म प्राप्ति के योग्य बनाया जाता है। यज्ञ से ही तपने वाला सूर्य कल्याणकारी बनता है।

अमेरिका में यज्ञ पर बहुत अच्छा शोध हुआ है डॉ. हैफकिन का कथन है कि घी जलाने से रोग के कीटाणु मर जाते हैं। फ्रांस के वैज्ञानिक प्रो. ट्रिलबिर्ट कहते है जली हुई शक्कर में वायु शुद्ध करने की बड़ी भाक्ति है। इससे टी.बी., क्षय रोग, चेचक, हैजा आदि बीमारियों दूर होती हैं। अंग्रेजों के शासनकाल में मद्रास के सेनीटरी कमिश्नर डॉ. कर्नल किंग आई.एम.एस. ने कहा घी और चावल में केसर मिलाकर अग्नि में जलाने से प्लेग जैसे भयानक रोग से बचा जा सकता है। सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ. स्वामी सत्यप्रकाश ने भी कहा है, यज्ञ में बहुत स्वास्थ्यप्रद उपयोगी ओजोन तथा फारमेल्डिहाइड गैसे भी उत्पन्न होती है। जो अत्यन्त लाभकारी एवं स्वास्थ्य वर्धक है। हमारे प्राचीन ऋषि मुनियों ने वैज्ञानिक आधार पर शोध करके यज्ञ सामग्री व समिधाओं का चयन किया था। जैस–बड़, पीपल, आम, बिल्व, पलाश, शमी, गूलर, आदि समिधाओं का घी सहित यज्ञ करने से पंचभूतों की शुद्धि होती है। जो हमारे पर्यावरण का अंग है। यज्ञ का एक उद्देश्य यह भी है कि पर्यावरण को शुद्ध एवं संतुलित रखना। यज्ञ विज्ञान का नियम है कि जब कोई पदार्थ अग्नि में डाला जाता है तो अग्नि उस पदार्थ को जलाकर परमाणु रूप में बना देती है। और परमाणु रूप में होने पर उसकी क्रिया शीलता अत्याधिक बढ़ जाती है। यह वैज्ञानिक सिद्धान्त है जैसे अणु से सूक्ष्म परमाणु, परमाणु से सूक्ष्म इलेक्ट्रॉन ये क्रमानुसार एक दूसरे से अधिक क्रियाशील एवं गतिशील है। यज्ञ में आहुति की गई समिधा अग्नि के द्वारा जला देने पर अत्यन्त सूक्ष्म हो जाती है। दूसरी तरफ वह सूक्ष्म पदार्थ अत्यन्त क्रियाशील एवं प्रभावी होकर विस्तृत क्षेत्र को प्रभावित करती है। जिस स्थान पर यज्ञ होता रहता है वहां के वातावरण में काफी परिक्षेत्र तक सुगंध विद्यमान रहती है। यज्ञ मानव को सफल बनाने के लिए एक आधारशिला है। अग्नि पवित्र है वेदों में अग्नि परमेश्वर के रूप में वन्दनीय है। यज्ञों के माध्यम से देवत्व से लेकर के अनेक रिद्धि–सिद्धियां प्राप्त की जा सकती हैं। यज्ञ के द्वारा व्यष्टि ही नहीं बल्कि समष्टि का कल्याण होता है। यज्ञ भारतीय संस्कृति का आदि प्रतीक है। शास्त्रों में गायत्री को माता और यज्ञ को पिता माना गया है। इन्ही दोनों के संयोग से मनुष्य का दूसरा आध्यात्मिक जन्म होता है जिसे द्विजत्व कहा गया है। प्रथम जन्म जीव, माता–पिता के शरीर से लेता है जो सभी को मिलता है किन्तु आत्मिक रूपान्तरण द्वारा अध्यात्मिक जन्म विरले लोगों को ही मिलता है जब मनुष्य अपनी अंतः प्रज्ञा से जागता है, जिसका माध्यम है यज्ञ। हर धर्म एवं सम्प्रदाय में अग्नि का बड़ा महत्व है उसे किसी न किसी रूप में जलाया या पूजा जाता है। इसी प्रकार यज्ञ भी एक प्रकार की पूजा है। यज्ञ शब्द के तीन अर्थ हैं– देव पूजा, दान और संगतिकरण।

संगतिकरण का अर्थ होता है संगठन, यज्ञ का एक प्रमुख्य उद्देश्य यह भी होता है कि धार्मिक प्रवृत्ति

के लोगों को संगठित करना। देवासुर संग्राम में जब देवता पराजित हो गये तब प्रजापति ने उनकी पृथक–पृथक शक्तियों का एकीकरण करके शक्ति के रूप में दुर्गा, काली आदि शक्तियों का प्रादुर्भाव किया जिससे असुर परास्त हो गये और सम्पूर्ण मानव जाति एवं देवताओं पर आये हुये संकट दूर हो गये। वेदों में अनेक प्रकार के यज्ञों का वर्णन होता है। मुख्यतः यज्ञ के दो प्रकार हैं– श्रौत यज्ञ और स्मार्त यज्ञ। श्रुति प्रतिपादित यज्ञों को श्रौत यज्ञ कहते हैं तथा स्मृति प्रतिपादित यज्ञों को स्मार्त यज्ञ कहते हैं। दोनों यज्ञों में अन्तर यह है कि श्रौत यज्ञ में केवल श्रुति प्रतिपादित मंत्रों का प्रयोग होता है और स्मार्त यज्ञ में वैदिक पौराणिक और तान्त्रिक मंत्रों का प्रयोग होता है। यज्ञ से आसपास का वातावरण शुद्ध, पवित्र एवं दिव्य ऊर्जा से आप्लावित होता है। आसपास के वातावरण में नानाप्रकार के कीटाणु यज्ञ के धूम और मंत्रों की ध्वनी तरंगों से समाप्त हो जाते हैं। इतना ही नहीं यज्ञ के द्वारा पर्यावरण संतुलित रहता है। सृष्टि उत्पत्ति ही यज्ञ का फल है। आजकल तो मानसिक रोगों से मुक्ति दिलाने वाली औषधि के रूप में यज्ञ को जाना जाता है। भारत ही नही वरन् अन्य देशों में यज्ञ चिकित्सा दिनों दिन पुष्पित पल्लवित होती जा रही है। यज्ञ का प्रभाव सूक्ष्म विज्ञान पर आधारित यज्ञ की प्रभावोत्पादकता हविर्द्रव्यों समिधाओं मंत्रोच्चार, प्रयोक्ता के व्यक्तित्व एवं समय विशेष पर आधारित होती है। किसी भी यज्ञ को सम्पादित करने के लिए संकल्प की आवश्यकता होती है यदि संकल्प के बिना मनुष्य कोई भी कार्य करता है तो उसका फल अल्प हो जाता है।

संकल्पेन बिना कर्म यत्किचिंत्कुरुते नरः।
फलं चाप्यल्पकं तस्य धर्मस्यार्द्धक्षयो भवेत्।।

संकल्प की अनिवार्यता के विषय में मार्कण्डेय पुराण में उधृत है–

''संकल्पं विधिवत्कुर्यात् स्नान–दान–व्रतादिके''

किसी भी कार्य को निर्विघ्नपूर्वक पूर्णता प्राप्ति हेतु शुभ मुहूर्त का होना आवश्यक है संकल्प में मास, पक्ष, तिथि, वार आदि का उच्चारण परमआवश्यक होता है। यदि संकल्प में इनका उच्चारण न हो तो यज्ञ फल प्राप्त नही होता। जैसा कि ऋषि देवल का वचन है–

मास–पक्ष–तिथिना# निमित्ताना# सर्वशः।
उल्लेखनं कुर्वाणो न तस्य फलभाग्भवेत्।।

हर सकाम यज्ञ के लिए मुहूर्तादि का विचार आवश्यक होता है। जिसका ज्ञान ज्योतिष शास्त्र के द्वारा होता है। शुभ समय, शुभ मुहूर्त, शुभ दिन, शुभ नक्षत्र, शुभ लग्न में किया गया देव यज्ञ सदा शुभता को प्रदान करता है। हर देव यज्ञ के लिए (यज्ञानुष्ठान) अलग–अलग समय पर अलग–अलग मुहूर्त ज्योतिष शास्त्र में बताये गये हैं। जैसे देव प्रतिष्ठ मुहूर्त–

चैत्रे वा फाल्गुने वापि ज्येष्ठे वा माधवे तथा।
माघे वा सर्वदेवानां प्रतिष्ठा शुभदा भवेत्।।

चैत्र मास, फाल्गुन मास, वैशाख मास, ज्येष्ठ मास और माघ मास में समस्त देवताओं की प्राण प्रतिष्ठा करना शुभ फलदायी होती है। देवताओं की प्राण प्रतिष्ठा के लिए

''सौम्यायने शुभा प्रोक्ता निन्दिता दक्षिणायने''

देवताओं की प्राण प्रतिष्ठा सदा उत्तरायण में ही शुभ फलप्रद है। दक्षिणायन में करना निन्दित है।

रोहिणी तीनों उत्तरा रेवती श्रवण हस्त पुनर्वसु, अश्विनी, धनिष्ठा, अनुराधा, मृगशिरा, और पुष्य नक्षत्र में भगवान विष्णु की प्रतिष्ठा करना उत्तम है।

पुष्य, श्रवण, और अभिजित् में इन्द्र, ब्रह्मा, कुबेर, कार्तिकेय की प्रतिष्ठा करना चाहिये।

अनुराधा नक्षत्र में सूर्य की प्रतिष्ठा उत्तम कही गयी है। हस्त और मूल नक्षत्र में दुर्गा आदि की प्रतिष्ठा करना उत्तम है।

रेवती नक्षत्र में गणेश यक्ष शेष और सरस्वती की प्रतिष्ठा करनी चाहिये। धनिष्ठा नक्षत्र में लोकपालों की प्रतिष्ठा श्रेष्ठ कही गई है।

तिथि– द्वादशी तिथि में भगवान विष्णु की प्रतिष्ठा, चतुर्थी तिथि में गणेश की प्रतिष्ठा, नवमी तिथि में देवी की प्रतिष्ठा करनी चाहिये।

दिन–

सोमे बुधे गुरौ शुक्रे शुभयोगे शुभे तिथौ।
मूले मैत्रे तथा स्वातौ कुर्यात्स्थापनमुत्तमम्।।

समस्त देवों की प्रतिष्ठा रोहिणी अश्विनी पुनर्वसु हस्त रेवती धनिष्ठा मृगशिरा पुष्य और उत्तरा नक्षत्र में

सोमवार बुधवार, गुरुवार, और शुक्रवार के दिन शुभ योग, शुभ तिथि, में मूल अनुराधा और स्वाती में देवस्थापना करना अति उत्तम है।

सूर्यादि सातों वारों में प्रतिष्ठा करने का भिन्न–भिन्न फल–

तेजस्विनी क्षेमकृदाग्निदाह–विधायिनी स्याद्धनदा दृढा च।
आनन्दकृत् कल्पविनाशिनो च सूर्यादिवारेशु भवेत्प्रतिष्ठा।।

रविवार को की गई प्रतिष्ठा तेजस्विनी, सोमवार को कल्याणकारिणी, मंगलवार को अग्निदाहकारिणी, बुधवार को धनदायिनी, गुरुवार को बलप्रदायिनी, शुक्रवार को आनन्दकारिणी, और शनिवार को सामर्थ्यविनाशिनी होती है।

जैसे– विष्णुयाग का मुहूर्त– मास में– चैत्र, फाल्गुन, ज्येष्ठ, वैशाख, माघ इन मासों में किया गया विष्णुयाग मंगलकारी होता है। पापों की निवृत्ति के लिए कार्तिक मास, मार्ग शीर्श मास, श्रावण मास वैशाख मास।

तिथियां – शुक्ल पक्ष की द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, दशमी, द्वादशी, त्रयोदशी, एकादशी, नवमी, षष्ठी तिथियां ग्राह्य हैं।

नक्षत्र– आर्द्रा, शतभिषा, स्वाती, रोहणी, श्रवण, मृगशिरा, पूर्वाषाढ़, ज्येष्ठा, आश्लेषा, रेवती, चित्रा, हस्त और धनिष्ठा तीनों उत्तरा, मूल पुष्य ग्राह्य नक्षत्र हैं।

योग– सौभाग्य, शोभन, आयुष्मान्, सिद्धि, साध्य, शुभ, शिव, वृद्धि, प्रीति, सिद्धि, ध्रुव, शुक्ल और, शुभ दिन– सोमवार, बुधवार, गुरुवार, शुक्रवार उत्तम दिन हैं।

''फाल्गुने वाऽथ चैत्रे वा माघ–वैशाखयोरपि।
ज्येष्ठमासे तथा पौषे विष्णुयागःप्रशस्यते''।।
द्वितीया–पंचमी–शष्ठी–सप्तमी–नवमी तथा।
द्वादश्येकादशी ग्राह्या विष्णुयागाख्यकर्मणि।।
आर्द्राशतभिशास्वातीरोहिणीश्रवणं मृगः।
पूर्वाशाढोत्तराशाढा ज्येष्ठाश्लेषा च रेवती।।
चित्रा हस्तो धनिष्ठा स्यादनुराधा च सिद्धिदा।
पुनर्वसुगुरोर्वारे द्वादश्यां श्रवणे तथा।।
मृगशीर्षे तदा योगे विष्णुः सवार्थसाधकः।
सौभाग्यः शोभनायुष्मान् सिद्धिः साध्यः शुभः शिवः।
वृद्धिः प्रीतिर्धृतिः सिद्धिर्ध्रुवः शुक्लस्तु शोभनः।।
सोमो बृहस्पतिश्चैव भार्गवोऽथ बुधस्तथा।

रुद्र यज्ञ का मुहूर्त–

दास्त्रे पौष्णे ध्रुवे रौद्रे हस्तप#दिति द्वये।
दिनेऽर्के भौमवारे च रुद्रारम्भः प्रशस्यते।।

अश्विनी, रेवती, आर्द्रा, हस्त, पुनर्वसु, पुष्य तथा ध्रुव नक्षत्रों में रविवार तथा मंगलवार को रुद्र यज्ञ में प्रशस्त हैं।

अम्बा यज्ञ का मुहूर्त–

कर्कटे सोमवारे च नैवम्यां मृगशीर्षके।
अम्बां यजेत् भूतिकामः सर्वभोगफलप्रदाम्।।

कर्क लग्न में, सोमवार में, नवमी में और मृगशिरा में ऐश्वर्या–भिलाषी समस्त भोग और फलको देनेवाली अम्बा का यजन (पूजन) करे।

लक्ष्मीनारायण यज्ञ का मुहूर्त–

वसन्ते लभते पुत्रं ग्रीष्मे सम्पत्तिमुत्तमाम्।
वर्षायां च महत्सौख्यं शारदे धनवर्द्धनम्।।
हेमन्ते लभते सर्वं शिशिरे च परां गतिम्।

लक्ष्मीनारायण यज्ञ को वसन्त ऋतु में करने से पुत्र की प्राप्ति, ग्रीष्म ऋतु में करने से उत्तम सम्पत्ति की प्राप्ति, वर्षा ऋतु में करने से महान् सुख, शरद् ऋतु में करने से धन की वृद्धि, हेमन्त ऋतु में करने से समस्त वस्तुओं की प्राप्ति और शिशिर ऋतु में करने से परम श्रेष्ठ गति (मोक्ष) की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार यज्ञ विज्ञान ज्योतिष शास्त्र में भरा पड़ा है। हर कार्य को सिद्धप्रद बनाने वाले दिन सोमवार, बुधवार, गुरुवार और शुक्रवार हैं।

सोमसौम्यगुरुशुक्रवासराः सर्वकर्मसु भवन्ति सिद्धिदाः।

प्रातः स्मरणीय विश्ववन्द्य वैज्ञानिक संत महर्षि महेश योगी के दैवीय निर्देशन में विगत कई वर्षों से विश्व शांति हेतु वेद भूमि, पुण्य भूमि, ब्रह्मस्थान में अतिरूद्र महायज्ञ एवं अद्भुद शांति यज्ञ प्रतिदिन

निरन्तर रूप से चल रहा है, जिसके द्वारा समस्त विश्व में सुख शांति का वातावरण बना हुआ है। जिससे यज्ञ विज्ञान में ज्योतिष का वैशिष्ट्य स्वतः प्रमाणित है।

संदर्भ ग्रन्थ :–

1. चरणव्यूह 5/1,
2. मत्स्यपुराण 144/44,
3. कालिकापुराण 31 ।40,
4. सूर्यसिद्धान्त 1/24,
5. भविष्य पुराण,
6. मार्कण्डेय पुराण,
7. मत्स्यपुराण,
8. धर्मसिन्धु तृतीय परिच्छेद,
9. श्रीपतिः,
10. विष्णुधर्मोत्तर पुराण,
11. नारदसंहिता,
12. नारदपंचरात्र,
13. विष्णुधर्मोत्तरपुराण,
14. ज्योतिर्विदाभरण,
15. विद्येश्वरसंहिता 16,
16. रत्नमाला,
17. मुहूर्तमार्त्तण्ड,
18. मुहूर्तचिन्तामणि।

Unnati International Journal of Multidisciplinary Scientific Research, U.I.J.M.S.R.
Peer Reviewed - Refereed Journal & Impact factor - 3.2, Open Access, Double Blind, Monthly Online Journal
ISSN : 2581-8872, Vol. : 1, No. : 10, Nov. - 2019
2019

जयपुर जिले की मलिन बस्तियों की समस्या एवं समाधान : एक भौगोलिक अध्ययन

प्रिय भूषण यादव

नगरीयकरण एव औद्योगिकीकरण ने जहाँ व्यक्ति को विज्ञान, शिक्षा तकनीकी ज्ञान और अच्छी सुविधाएं प्रदान की हैं। वहीं करोड़ों व्यक्तियों को नरकीय जीवन व्यतीत करने के लिए विवश किया है। महानगरों, शहरों एवं कस्बों में जनसंख्या तीव्र गति से बढ रही है किन्तु बढती जनसेंख्या के अनुपात में आवासीय गृहों का निर्माण नहीं हो पाता है। इस प्रकार गृह अभाव के कारण गृह किराये में तीव्र वृद्धि होती है। जिसका वहन निर्धन एवं अल्प आय परिवार नहीं कर सकता है और बेघर जीवन बिताने को विवश होता है। इस प्रकार नगरीय जनसंख्या की सामान्यतः 20–50 प्रतिशत जनसंख्या गिराये जाने योग्य जर्जर एवं गन्दगी पूर्ण मकानो में आश्रय लेने के लिए मजबूर है। इसके उदाहरण स्वरूप अपोलो–11 के चन्द्र यात्री जब विश्व की सद्भावना यात्रा पर रोम पहुँचे तो वहां उनके स्वागत में खड़े लोगों ने नारे लगाये **"हमे मकान चाहिए–हमें मकान चाहिए"** इससे स्पष्ट होता है कि आज हमारी निवास की स्थिति क्या है? और हमारी प्राथमिकताएँ क्या हो गई है? नगरों की मुख्य समस्याओं में आवासों की कमी को शामिल किया जाता है।

इस प्रकार आवासों की कमी का यह स्वरूप नगरों के साथ–साथ वर्तमान में उपनगरीय क्षेत्रो में एवं कस्बों में भी बढ़ रहा है। मकानों का पर्याप्त मात्रा में निर्माण नहीं होने से वहां अनेक गन्दी बस्तियों का निर्माण हो गया है।मलिन बस्तियों में मानव के नारकीय जीवन की झलक देखी जा सकती है। विश्व के प्रत्येक प्रमुख शहर में, शहर के 20–50 प्रतिशत लोग मलिन बस्तियों और उसी के समान दशाओं वाले क्षेत्र में निवास करते हैं। मलिन बस्तियोँ का विकास नगरों की उत्पत्ति के साथ ही शुरू हो गया था। जो मुख्यतः अपराध, प्रदूषण, बीमारियों को पैदा करने में सहायक हैं। मलिन बस्तियाँ वर्तमान में एक वैश्विक समस्या बन चुकी है। शहरों के लिए मलिन बस्तियाँ कैंसर के समान है, शहरों की इस वृद्धि को विद्वानों ने ''**पत्थर का रेगिस्तान**'' **"व्याधिकी नगर"** एवं ''**नरक की संक्षिप्त रूपरेखा**'' कहकर पुकारा है। एक छोटी सी झोंपड़ी, कच्चे मकान अथवा एक कोठरी में 10–15 व्यक्ति निवास करते हैं। जल के निकास की यहाँ कोई व्यवस्था नहीं होती है, पानी सड़ता रहता है, कूड़े–कचरे का ढेर लगा रहता है। तंग एवं संकरी मलिन बस्तियाँ, जहाँ जीवन कम और बीमारियाँ अधिक है। यहाँ पर पीले, मुरझाए चेहरे, चिपके गाल, उभरती हड्डियाँ, फटे–गन्दे कपड़े आदि सौन्दर्य स्वरूप हैं। इनके जीवन का पता नहीं, ये कब जवान होते हैं और कब बूढ़े हो जाते हैं, ये तो मौत के मुँह में जन्म लेते हैं, इनका जिन्दा रहना और मरना समाज के लिए कोई महत्व नहीं रखता। आखिर गरीब के मरने का कोई अर्थ नहीं होता। इनका जीवन नाली के कीड़ों जैसा होता है।

मलिन बस्तियों में आर्थिक दृष्टि से कमजोर एवं नागरिक सुविधाओं का अभाव पाया जाता है। सामान्यतया इनमें गृह विहीन, बेकार, शराबी, श्रमिक, भिखारी और अनैतिक कार्यों में ग्रस्त लोग निवास करते हैं। ये बस्तियाँ एक ऐसी संस्कृति को जन्म दे रही हैं, जिन्हें **"आस्कर लेविस"** ने गरीबों की संस्कृति कहकर पुकारा है। इन बस्तियों में अपराध, एकाकीपन, आत्महत्या, बुराइयाँ एवं गैंगवार भी पाया जाता है। इनमें रहने वाले लोगों से सामाजिक व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने की एवं व्यवस्था बनाये रखने की अपेक्षा नहीं की जा सकती है, ऐसा व्यवस्था का मानना है। इन बस्तियो में स्वस्थ सामाजिक जीवन का विकास नहीं हो पाता है अतः इन्हें विघटन के केन्द्र भी कहते हैं। गन्दी बस्तियों में मकान अन्धेरे एवं सीलन युक्त होते हैं। शौचालय, स्नानाघर, पानी, बिजली, हवा एवं रोशनी जैसी सुविधाओं का अभाव पाया जाता है। इन बस्तियों में मच्छर, खटमल, छिपकलियों, चूहों आदि जीवों से सम्बन्धित बीमारियों के कीटाणुओं की बहुलता पायी जाती है।

परिवार के लिए मकान अव्यवस्थित तरीके से बने होते हें। इनके कमरे अन्धकारमय होते हैं इनके पास रहने के लिए एकमात्र कमरा होता है, जिसमें स्वच्छ हवा का पूर्ण अभाव पाया जाता है, कचरा निस्तारण एवं जल प्रवाहन के लिये उत्पन्न समस्या विकराल रूप धारण किये हुए होती है।

वस्तुतः मलिन बस्तियाँ सामाजिक तन्त्र का एक भाग होती हैं। इनके द्वारा बस्तियों एवं सामाजिक स्वरूप के मध्य एक अन्तर्सम्बन्ध बनाया जाता है। नगरीय शोधकर्ताओ के लिए ये अध्ययन का मुख्य क्षेत्र होती हैं। सामान्यतः इनके वर्गीकरण के लिए भौतिक, भूआकृतिक, स्वास्थ्य दशाओं एवं परिस्थितिवश के

आधार को मुख्य माना जाता है। सामाजिक तन्त्र के विकास के लिए विभिन्न प्रकार के सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं ऐतिहासिक कारक जिम्मेदार होते हैं। वर्तमान में इनके सूक्ष्म विश्लेषण के द्वारा इस शोध प्रबन्ध में जयपुर जिले की मलिन बस्तियों का बारीकी से अध्ययन किया जा रहा है।

इस प्रकार नगर के स्तर हीन व अस्वास्थ्यप्रद आवासीय क्षेत्र जहाँ मूलभूत जन सुविधाओं का भी अभाव होता है और अल्प आय वर्ग के व्यक्ति अन्यत्र आवास क्रय करने या किराया देने की क्षमता नहीं होने के कारण इनमें निवास करते हैं। आज गन्दी बस्तियाँ नगरीकरण का एक विश्वसनीय तथ्य बन गयी है। जिनके द्वारा समीपवर्ती भाग अथवा अपनी अवस्थिति वाले क्षेत्र को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से कलुषित किया जा रहा है। इन बस्तियों के द्वारा सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं पर्यावरणीय स्तर की न्यूनता के साथ–साथ लोगों में आपसी वैमनस्यता, कटटरवादिता, मानसिकहीनता का उदय किया जा रहा है। ये वे स्थान हैं, जहाँ गन्दगी चिर स्थायी है। यह नगर के नरक, कलंक और अभिशाप है। इस प्रकार नगर में भूमि की कमी अथवा इसका महंगा होना चाहे उसे खरीदने के लिए हो अथवा किराये पर रहने के लिए दोनो ही निर्धन, श्रमिक, और बेरोजगार व्यक्ति की क्षमता से बाहर की वस्तु है।

नगरीय भौगोलिक अनुसंधान प्रमुख रूप से नगर के भीतर व नगर के बीच पाई जाने वाली क्षेत्रीय विभिन्नताओं से सम्बन्ध रखता है । यह शोध नगरीय व अनगरीय क्षेत्रों के बीच के सम्बन्धों का अध्ययन करता है। नगरों को मुख्यतः सुविधाओं का केन्द्र माना जाता था, लेकिन वर्तमान में बढते उपनगरीय कस्बों के फलस्वरूप जनसंख्या का जमाव उपनगरों व छोटे कस्बों में भी बढ़ रहा है। जिससे महानगरों के साथ–साथ छोटे कस्बों की बस्तियों का अध्ययन भी महत्त्वपूर्ण हो गया है। ग्रामीण लोग रोजगार की तलाश में नगरों व उपनगरों की और बढ़ते है और अंत में यही लोग शहरी चकाचौंध से त्रस्त होकर मलिन बस्तियों के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। मलिन बस्तियों की समस्या नगरों की उत्पत्ति के साथ शुरू हो जाती है, जो मुख्य रूप से अपराध, प्रदुषण एवं बिमारियों को पैदा करने में सहायक हैं। वर्तमान में मलिन बस्तियाँ एक वैश्विक समस्या बन चुकी है। भारत के अन्तर्गत नगरों में 17 प्रतिशत जनसंख्या मलिन बस्तियों में निवास करती है जिसमें जयपुर में भी मलिन बस्तियों के अनेक केन्द्र स्थापित हो चुके हैं। जिनकी उत्पत्ति में अनेक कारणों यथा सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियाँ, बदलती अर्थव्यवस्था, व्यापार, उद्योग, वैश्वीकरण, राजनीतिक प्रभाव, बेरोजगारी, बेकारी, सरकारी भूमि पर अतिक्रमण, कानून व्यवस्था, भूमाफिया आदि का प्रभाव है। जो यहाँ के निवासियों की दयनीय स्थिति के लिये उत्तरदायी है। वर्तमान में जयपुर शहर के साथ–साथ उपनगरीय कस्बों में भी मलिन बस्तियों का विकास तीव्र गति से बढ़ता जा रहा है। जिससे न केवल जयपुर शहर अपितु उपनगरीय कस्बों का वातावारण भी बिगड़ता जा रहा है।

जयपुर जिले की मलिन बस्तियों को समानताओं, विभिन्नताओं व उत्पत्ति के आधार पर तीन मुख्य भागों में बाँट सकते हैं:–

1. वे बस्तियाँ जो बुनियादी हैं तथा जिनमें निम्न जाति के लोग रहते हैं ।
2. दूसरे प्रकार की बस्तियाँ वे हैं जो एक विशेष समय के बाद स्थायित्व में आयी है ।
3. तीसरे प्रकार की बस्तियों में उनको शामिल करते हैं जो अस्थायी विकास की अवस्था से गुजर रही हैं ।

मलिन बस्तियों का विकास :– जनसंख्या की तीव्र वृद्धि के कारण दुनिया में झुग्गी झोंपडियों की संख्या में दिनों दिन वृद्धि हुई है। शहरी आबादी में झुग्गी–झोंपडियाँ तीसरी दुनिया के रंग में हैं। संयुक्त राष्ट्र की आवास एजेंसी की रिपोर्ट के अनुसार 2006 में 327 करोड लोग राष्ट्रमंडल देशों की झुग्गी झोंपडियों में रहते हैं। राष्ट्रमण्डल देशों के प्रत्येक छः नागरिकों में से एक झुग्गी–झोंपडियों में रहता है। शहरी निवासियों में 3 में से 2 लोग मलिन बस्तियों में रहते हैं तथा वर्तमान में इन राष्ट्रमण्डल देशों में तेजी से शहरीकरण बढ़ने से मलिन बस्तियाँ बढ़ती जा रही हैं। तीव्र औद्योगीकरण के कारण 19वीं शताब्दी में यूरोप में तेजी से जनसंख्या बढ़ी व इसके साथ ही मलिन बस्तियों का उदय होता गया। अमेरिका में गंदी बस्तियों का विकास 20वीं सदी के अन्त व 21वीं सदी के शुरू में बड़ी संख्या में अप्रवासियों की संख्या बढने के कारण हुआ।

भारतीय मलिन बस्तियो से सम्बन्धित कुछ तथ्य :–

- सरकारों द्वारा अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लोगों के विकास के लिए विभिन्न कार्यक्रम चलाये जाते हैं, फिर इन जाति के लोगों की मलिन बस्तियों में सर्वाधिक बाहुल्यता पाई जाती है।

- बस्तियों के अन्दर लिंगानुपात में पुरूषों की अधिकता पाई जाती है जिसका प्रमुख कारण बाहरी क्षेत्रों से रोजगार एवं शिक्षा के लिए पुरूषों का शहरी क्षेत्र की ओर आना है।
- भारत में मिलने वाली जातिगत सामाजिक संरचना का भी विकास में मुख्य योगदान है।
- बस्तियों में आपराधिक क्रियाकलापों की प्रधानता, निम्न साक्षरता प्रतिशत, स्कूलो से अधिक मात्रा में बच्चों का स्कूल छोड़ना इन बस्तियों की प्रमुख विशेषता है।
- ग्रामीण क्षेत्र में मिलने वाली गरीबी, बस्तियों की उत्पति का प्रमुख कारण है क्योंकि इनमें रहने वाले गरीब लोग ही रोजगार की तलाश में सर्वाधिक शहरी क्षेत्रों की ओर पलायन करते हैं।

उपलब्ध साहित्य की समीक्षा :–

ओमप्रकाथ जोशी 2006 ने मलिन बस्तियों की उत्पत्ति के लिए दो तथ्यों को प्रमुख आधार बताया, जिसमें प्रथम मकानों के स्वरूप एवं उसकी बनावट को शामिल किया तथा दूसरे तथ्य के रूप में वहां के निवासियों को प्राप्त सुविधाओं जिसमें शौचालय, स्नानगृह, जलापूर्ति, स्वास्थ्य आदि को शामिल किया है। इस प्रकार सभी कच्चे एवं अर्द्ध पक्के मकान मलिन बस्तियों की श्रेणी में आते हैं।

आदित्य प्रकाथ ने सुनियोजित रूप से बसे चण्डीगढ़ शहर में मलिन बस्तियों की उत्पत्ति होना दुर्भाग्यपूर्ण बताया है तथा इनकी उत्पत्ति के संदर्भ में कहा कि चण्डीगढ़ शहर में मलिन बस्तियों की मौजूदगी से नियोजित होते हुए भी यहाँ पर नियोजन की योजना असफल साबित हो गयी है।

माइक डेविस ने 2006 में शहरी बस्तियों की दशा को देखते हुए "ग्रह की बस्तियाँ" नामक पुस्तक में बताया की विश्व के अधिकांश मावन शहरों मे निवास करते है साधारणतः किसी भी शहर के एक तिहाई लोग गंदी बस्तियों में निवास करते हैं। उन्होंने बताया कि ''हम सोचते हैं कि मलिन बस्तियों के बारे में हमने पता लगाया किन्तु वास्तव में हमारे पूर्वजों को सन् 1830–1840 में मलिन बस्तियों के बारे में पता था ।'' डेविस ने विस्तार से बताया कि दुनिया भर में गंदी बस्ती का वातावरण फैला हुआ है। उन्होने बताया की मलिन बस्तियों की तुलना करने के बजाय उनका परीक्षण करना चाहिए जनसंख्या के आर्थिक व प्रवासी होने के कारण मलिन बस्तियों का उद्गम हो रहा है।

ITPI Journal 2007 के शोध पत्र Banglore Metropolitan city Spatial Distribution of Sample Slum मे गाँव से शहर की और प्रवास के कारणों सामाजिक कारकों, मलिन बस्तियों के अन्तर्गत जल प्रवाह, सीवरेज, कचरे के निपटान, घरों की व्यवस्था, भू आकृति विशेषता, सुविधाओं का उपयोग, बाजार आदि से संबधित प्रश्नों का समावेश कर 473 मलिन बस्तियों के आँकड़े प्रकाशित किये।

रामदेव त्रिपाठी 2007 ने आवासीय मकानों की कमी को मलिन बस्तियों के उद्य की प्रमुख समस्या माना है, यह समस्या औद्योगिकीकरण, गरीबी, नगरीयकरण एवं प्रवास की प्रवृति द्वारा उत्पन्न होती है। जिनमें अधिकांश आवास गन्दे, सघन एवं वायु तथा प्रकाशीय आपूर्ति को प्राप्त करने में सक्षम नही है।

बंसल ने अपनी पुस्तक **"नगरीय भूगोल"**, 2008 में बताया कि वर्तमान में तीव्र गति से बढ़ता हुआ औद्योगिकीकरण एक छदम नगरीकरण है तथा नगर विकास के इंजन बनने के स्थान पर अवरूद्धता की ओर अग्रसर हो रहे हैं देहात से पलायन के फलस्वरूप मलिन बस्तियों का उद्गम जारी है।

मोर्य ने अपनी पुस्तक **"अधिवास भूगोल"** 2008 में मलिन बस्तियों को परिभाषित करते हुए उनकी विशेषताओं, विकास हेतु उत्तरदायी कारकों, विश्व में मलिन बस्तियों की स्थिति कोलकाता, दिल्ली, चेन्नई, अहमदाबाद और कानपुर में बस्तियों के वितरण एवं उनके परिभाषित नाम, बस्तियों के दुष्परिणामों तथा उनके सम्भावित सुझावों का उल्लेख किया है। नेहरू जी ने कानपुर के अहातों को देखकर एक बार कहा था कि ''आदमी–आदमी को इस रूप में कैसे देखता है।''

सी.सी मौली, जनगणना प्रतिवेदन–2011 (रजिस्ट्रार जनरल/जनगणना कमिश्नर) ने बताया कि भारत के शहरी क्षेत्रों में कुल 4041 कस्बों में से 2543 कस्बों में मलिन बस्तियाँ पायी गयी हैं। इन मलिन बस्तियों में संख्या के दृष्टिकोण से महाराष्ट्र में सर्वाधिक 21,359 मलिन बस्तियाँ हैं। जबकि सम्पूर्ण भारत वर्ष में कुल बस्तियाों की संख्या 1.08 लाख हैं। इनमें से 37072 अधिसूचित बस्तियाँ, 30846 गैर अधिसूचित तथा 40309 चिन्हित मलिन बस्तियाँ हैं।

रूकमणी श्रीनिवासन मार्च 2013 ने भारत के शहरी क्षेत्रों में प्रत्येक छः निवासियों में से एक व्यक्ति को मलिन बस्तियों में रहता माना है।

अध्ययन के उद्देश्य :–

1. मलिन बस्तियों में स्थित समस्याऐ एवं सम्भावित

खतरों का विश्लेषण करना।

2. मलिन बस्तियों के उत्पन्न होने, उनकी विभिन्न विकास अवस्थाओं का अध्ययन करना।
3. सामाजिक व सांस्कृतिक दशा का अध्ययन करना व उनका समीक्षात्मक विश्लेषण करना।
4. मलिन बस्तियों को प्रभावित करने वाले भौगोलिक, आर्थिक व सामाजिक कारकों का विश्लेषण करना।
5. मलिन बस्तियों हेतु उपलब्ध संसाधनों के स्तर एवं उपलब्धता सुनिश्चित करना, ताकि इनका मलिन बस्तियों के संसाधन बढाने में उपयोग हो सके।
6. मलिन बस्तियों में बिमारियों व परिवार नियोजन के प्रति जागरूकता पैदा करना।
7. जिले की मलिन बस्तियों की पहचानकर समस्याओं अनुरूप योजनाऐं क्रियान्वित करना।
8. मलिन बस्तियों के विकास के अनुरूप योजना बनाना।
9. बस्तियों में मिलने वाली सामाजिक आर्थिक दशा का पता लगाना।
10. मलिन बस्तियों में रहने वाले लोगो की कार्यकलाप गतिविधियों का पता लगाकर उनके आर्थिक स्वरूप का अध्ययन करना।
11. बस्तियों में लिंगानुपात, रोजगार सम्बन्धी दशाओं का विश्लेषण करना।

शोध परिकल्पना :–

1. मलिन बस्तियों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही हैं।
2. मलिन बस्तियाँ निम्न जाति वर्ग एवं बाहरी ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों की अधिकता वाला आवासीय क्षेत्र हैं।
3. मलिन बस्तियों का स्थानिक वितरण एकाकी एवं विछिन्न प्रक्रम का होता है।

विधितंत्र :– प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में प्राथमिक एवं द्वितीयक आंकड़ों का गहन विश्लेषण किया गया है तथा उन्हें मानचित्र कला की विभिन्न तकनीकों एवं सांख्यिकी विधियों जैसे माध्य, मानक विचलन, सहसंबंध, प्रतिचयन, प्रायिकता एवं ग्राफ, आरेख तथा रेखाचित्रों आदि के द्वारा आवश्यकतानुसार प्रदर्शित किया गया है। आंकड़ों के विश्लेषण में आधुनिक तकनीक तथा कम्प्यूटर, इन्टरनेट तथा रिमोट सेंसिग का सहयोग लिया गया है।

शोध के विषय को सम्पन्न करने के लिये प्रयुक्त विधितंत्र में सबसे पहले जयपुर शहर एवं जयपुर जिले में मलिन बस्तियों की अवस्थिति वाले छोटे कस्बों को अध्ययन का आधार मानकर चुना। इनमें से बस्तियों को चुनने के लिये सामान्य सूचनायें जो बस्तियों की समस्याओं को प्रदर्शित करती हैं जो उन्हें स्थानीय नगर निगम, नगर पालिकाओ तथा जे.डी.ए. के द्वारा प्राप्त कर नगर नियोजन संस्थान की सहायता से इनकी स्थिति जानकर सबसे अधिक उच्च स्तर व निम्न स्तर की बस्तियों को चुना गया, बस्तियों को चुनते समय निम्न तथ्यों को ध्यान में रखा गया।

1. मलिन बस्तियोँ में मिलने वाली सभी प्रकार की भौतिक, पर्यावरणीय दशाएं मौजूद हो।
2. लोगो की क्रियाशीलता, आवासीय स्वरूप, जातिगत भिन्नता एवं सुविधाओं में पर्याप्त विविधता मिलती हो।
3. इनमें निवास करने वाले परिवारों व उनकी आजीविका के स्त्रोतों को घ्यान में रखा गया।
4. सरकारी–गैरसरकारी–स्वयंसेवी संस्थाओं एवं व्यक्तिगत फर्मों/सोसायटी के द्वारा सम्पन्न किये जा रहे सामाजिक, आर्थिक कार्यक्रमों को ध्यान में रखा गया।

जयपुर महानगरीय क्षेत्र के अधीनस्थ मलिन बस्तियाँ जो क्रमशः नगर निगम जयपुर एवं जे.डी.ए. के अधिकार क्षेत्र में थी उनमें से प्रत्येक जोन से एक बस्ती को चुना गया तथा उपनगरीय कस्बों की प्रत्येक बस्ती को अध्ययन के लिए चुना। जयपुर महानगरीय क्षेत्र के अधीन क्षेत्रों में जयपुर नगर निगम (ज0न0नि0) तथा जयपुर विकास प्राधिकरण (ज0वि0प्रा0) के नाम से तथा उपनगरीय कस्बों में सभी 16 बस्तियों को उ0न0क0 के नाम से विश्लेषित किया गया है।

सुझाव :–

i. प्रारम्भिक अवस्था में ही ऐसे उत्पत्ति स्थल वाली बस्तियों को चिन्हित कर निस्तारण करना चाहिए।
ii. खाली पड़ी उपेक्षित सरकारी भूमि पर अतिक्रमण नहीं होने देना चाहिए।
iii. नालों के समीप व उत्खात क्षेत्रों में पार्कों का निर्माण किया जाना चाहिए।
iv. भूमाफिया प्रणाली पर रोक लगनी चाहिए।
v. रेलवे लाइनों एवं सड़कों के किनारों पर बैरियर लगाकर छोटे पार्क विकसित किये जायें।
vi. स्थानीय निकायों, नगरपालिकाओं, सरकारों द्वारा मलिन बस्ती निवारण हेतु कठोर नियम एवं जनसहभागी कार्यक्रमों को बढ़ावा देना चाहिए।

vii. स्वयंसेवी संस्थाओं को इनके निस्तारण में ज्यादा से ज्यादा स्थान देना चाहिए।

viii. जल निकास, कचरा निस्तारण एवं शौचालयों की व्यवस्था करके इनके प्रति लोगों को जागरूक करना चाहिए।

ix. इनमें निवासित लोगों को लघु उद्योग हेतु ऋण सुविधा प्रदान की जाये।

x. शिक्षा के प्रतिशत में वृद्धि करने के लिए बच्चों और वयस्कों को शिक्षा सुविधा प्रदान की जानी चाहिए तथा जवान एंव युवा वयस्कों को रोजगारपरक सलाह एवं जानकारी प्रदान की जानी चाहिए।

xi. कामकाजी कार्यरत महिलाओं के बच्चों के लिए देखभाल की व्यवस्था होनी चाहिए।

xii. युवाओं एवं वयस्कों को रोजगार सुविधाऐं प्रदान की जानी चाहिए।

xiii. लोगों को परिवार नियोजन सम्बन्धी सलाह एवं जानकारी प्रदान की जाये।

xiv. बच्चों, युवाओं एवं वयस्कों के लिए मनोरंजन की सुविधाऐं प्रदान की जानी चाहिए।

संदर्भ सूची :–

1. तिवारी आर.सी. 2006 : 'अधिवास भूगोल' प्रयाग पुस्तक भवन इलाहाबाद।
2. बंसल डॉ. सुरेश चन्द्र 2008 : 'नगरीय भूगोल' मीनाक्षी प्रकाशन मेरठ।
3. बघेल डॉ. डी.एस. : 'शोध पद्धतियाँ' साहित्य भवन पब्लिशर एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, आगरा।
4. शर्मा डॉ. नंदेश्वर, राव डॉ. बी.पी. : 'नगरीय भूगोल' वसुन्धरा प्रकाशन गोरखपुर।
5. वर्मा डॉ. एल.एन. 2004 : 'भारत का भूगोल' राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, अजमेर।
6. सिंह डॉ. यू.बी. : 'अधिवास भूगोल' जवाहर पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
7. भल्ला एल.आर. 2003 : 'राजस्थान का भूगोल' कुलदीप पब्लिकेशन, अजमेर।
8. शर्मा एच.एस. व एम.एल. 2004 : 'राजस्थान का भूगोल' पंचशील प्रकाशन, अजमेर।
9. चौहान तेजसिंह 1999 : 'राजस्थान का भूगोल' विज्ञान प्रकाशन, जोधपुर।
10. मुखर्जी, रवीन्द्र नाथ (1981) : भारतीय सामाजिक समस्याएं विवेक प्रकाशन, जवाहर नगर दिल्ली।
11. सिंह डॉ. वी.एन. (1994) : (ग्रामीण एवं नगरीय समाजशास्त्र विवेक प्रकाशन जवाहर नगर दिल्ली, पी.पी. 141–153)
12. शर्मा, डॉ. राजेन्द्र कुमार (1996) : नगरीय समाजशास्त्र एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स
13. बंसल, डा. एस.सी. (1999) : नगरीय भूगोल, मीनाक्षी प्रकाशन मेरठ
14. यादव, रामजी (2005) : सामाजिक समस्याएं अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस नई दिल्ली (पी.पी. 232–233)
15. जोशी, डॉ. ओमप्रकाश (2006) : ग्रामीण एवं नगरीय समाजशास्त्र रिसर्च पब्लिकेशन त्रिपोलिया बाजार, जयपुर।
16. प्रकाश, आदित्य : सेवानिवृत प्राचार्य, आर्किटेक्चर कॉलेज, चण्डीगढ।
17. त्रिपाठी, डा. रामदेव (2007) : जनसंख्या भूगोल वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर।
18. जोशी, डॉ. रतन (2007) : नगरीय भूगोल, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर।
19. मौर्य, डा. एस.डी.(2008) : अधिवास भूगोल शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, (पी.पी. 388–397)
20. गुप्ता : भारतीय सामाजिक समस्याएँ।
21. राव, डॉ. बी.पी. एवं शर्मा, : नगरीय भूगोल, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर।

Unnati International Journal of Multidisciplinary Scientific Research, U.I.J.M.S.R.
Peer Reviewed - Refereed Journal & Impact factor - 3.2, Open Access, Double Blind, Monthly Online Journal
ISSN : 2581-8872, Vol. : 1, No. : 10, Nov. - 2019
2019

आजीवन सीखना : विकास की अवस्थाएँ

अपर्णा श्रीवास्तव
अतिथि सहायक प्राध्यापक, शिक्षा संकाय डॉ. हरीसिंह गौर केंद्रीय विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

प्रस्तावना :– जीवन में सीखने की प्रक्रिया सदैव चलती रहती है अर्थात आजीवन सीखना इसलिए मानव अपने जन्म से मृत्यु पर्यन्त कुछ न कुछ सीखता रहता है। जन्म के बाद बच्चा अपने आप को एक विशेष प्रकार के भौतिक वातावरण में पाता है। उसकी विभिन्न प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति इस भौतिक/सामाजिक वातावरण के अंदर होती है। इस प्रकार के अनुकूल के लिये गत अनुभवों द्वारा अपने व्यवहार में परिवर्तन लाता है। अपने अनुभवों द्वारा व्यवहार में परिवर्तन लाना सीखना कहलाता है। बालक अपने जीवन के हर पड़ाव पर, हर स्थिति में हर समय हर जगह कुछ न कुछ सीखता है और इस सीखने के द्वारा वह अपने व्यवहार में परिवर्तन करता है। अपने आने वाले जीवन मे कई समस्याओं का समाधान आसानी से कर लेता है। साथ ही अपने आस–पास के वातावरण से समायोजन स्थापित करता है। एक बालक जब जन्म लेता है तब वह नये परिवेश में आता है तथा उसे उसके परिवार के सदस्यों से कई सारी चीजे लेता हैं तब वह नये परिवेश में आता है तथा उसे उसके परिवार के सदस्यो से कई सारी चीजे सीखने को मिलती है, जैसे बोलना, चलना, खाना, पीना, प्रेम स्नेह आदर, क्रोध, लड़ना झगड़ना आदि व्यवहार यदि इन व्यवहारों में से कोई व्यवहार अमान्य होता है और बालक उस अमान्य व्यवहार को करता है तो उसे अमान्य व्यवहार के लिये परिवार सदस्यों द्वारा नकारात्मक प्रतिक्रिया प्राप्त होती है। जिससे वह असामान्य हो जाता है, परंतु जैसे ही वह अपने अमान्य व्यवहार में परिवर्तन कर लेता है तो उसे परिवार के सदस्यों द्वारा प्रेम तथा स्नेह प्राप्त होने लगता है, ठीक इसी प्रकार चाहे स्थिति सामान्य हो अथवा असमान्य मानव हर समय आजीवन सीखता चला जाताहै तथा अपने सीखे अनुभवों से लाभ उठाता चलता है। ये अनुभव सुखद तथा दुःखद दोनों तरह के हो सकते हैं। इस प्रकार अनुभवों के आधार पर अपने व्यवहार में परिवर्तन लाता है, जैसे–जैसे वह अनुभव के आधार पर नवीन बाते सीखता जाता है वैसे–वैसे ही आवश्यकतानुसार अपने अनुभवों को संगठित करता चला जाता है अतः कहा जा सकता है कि–

''सीखना अनुभव और प्रशिक्षण द्वारा व्यवहार में परिवर्तन है''
गेट्स व अन्य

इसी प्रकार बुडवर्थ ने ठीक लिखा है कि –

''सीखना विकास की प्रक्रिया है। अर्थात सीखना सिखाना आजीवन चलता है।''

सीखना : विकास की अवस्थाएं :–

1. **शैशवास्था : 0–5 वर्ष :– जीवन का सबसे महत्वपूर्ण काल** – जन्म से लेकर पांच वर्ष तक की आयु को शेशवास्था के नाम से जाना जाता है। जन्म के समय बालक की लंबाई 20.5 इंच तथा भार 2.5 किलो से 4 किलो होता है। इस आयु में बालक पूर्णतः पराश्रित रहता है, उसे अपने विकास के लिये माता–पिता व परिवार के सदस्यों पर निर्भर रहना पड़ता है।

इस अवस्था का अपना अलग महत्व है, क्योंकि सीखने की साक्षात प्रक्रिया यहां से प्रारंभ होती है जब बालक जन्म लेता है तथा अपने आस–पास के वातावरण और अपने बड़ों से सीखना शुरू करता है। इस काल में बालक जिज्ञासु प्रवृति का होता है तथा अपने आस–पास के वातावरण को स्वयं जानने का प्रयास करता है।

वह अपने से बड़ों से शब्द वाचन आदि क्रियाओं का सीखता है तथा इस काल में बालकों में अनुकरण की प्रवृति अधिक पायी जाती है।

इस काल में बालक जिज्ञासु होते हैं तथा उनके लिये शिक्षा ऐसी हो जो उनकी जिज्ञासा को शांत कर सके। उनमें सीखने की प्रबल इच्छा होती है। जिसे एक शिक्षक के नाते इस जिज्ञासा को रचनात्मक कार्यों के प्रति मोड़ देना चाहिए। इन्हें दंड/भय से दूर रखा जाये। बालक खेल में आनंद प्राप्त करता है तो उसे खेल–खेल में शिक्षा प्रदान करने का आयोजन किया जाना चाहिए। इसी कारण नर्सरी, मांटेसरी, किंडरगार्डन जैसी पद्धति वाले विद्यालयों के अधिक से अधिक

विकास किया गया है।

2. **बाल्यावस्था : 5 से 12 वर्ष :– जीवन का अनोखा काल** – शैशवास्था के बाद ही बाल्यावस्था प्रारंभ होती है इस अवस्था में बालक शारीरिक/मानसिक परिवर्तन होते हैं उसका बाहरी परिवेश से संपर्क बढ़ता है, तथा जिज्ञासाओं में तेजी से वृद्धि होती है। इसलिये वह अधिक से अधिक ज्ञान अर्जित करना चाहता है। उसकी गतिविधियों का दायरा बढ़ जाता है वह ऐसे–ऐसे कार्य करना पसंद करता है जिससे उसे आत्मगौरव की अनुभूति हो। वह आंदमयी व सृजनात्मक कार्यों की ओर तेजी से बढ़ने लगता है। इस काल में वृद्धि चिंतन आदि दृष्टियों से बालक अधिक विकास करता है। इस कारण इसे जीवन का अनोखा काल कहते हैं। इस काल में बालक सामुहिक खेलों को अधिक पसंद करते हैं, जिससे उनमें सामूहिकता की भावना का विकास होता है साथ ही सामाजिकता की भावना जैसे मिलना–जुलना, वार्तालाप करना, पर्यावरण को लेकर जागरूक होना आदि का विकास भी इसी काल में होता है। स्मरण शक्ति का विकास तथा रचनात्मक कार्यों में रूचि, भाषा का विकास आदि इस अवस्था की विशेषताएं हैं।

इस काल में बालकों की शिक्षा का आयोजन ऐसा होना चाहिए जिससे बालकों में अधिक से अधिक रचनात्मक कार्यों के प्रति अधिक झुकाव हो तथा शुरू से उनमें ऐसी आदत का विकास हो कि उन्हें अपनी सारी क्षमता किसी ऐसे कार्य में लगानी है जिससे वो तो सीखे साथ ही उनके आस–पास के लोग भी उस चीज को सीख सके। विद्यालयों में सामाजिकता की भावना को बढ़ावा देने वाले आयोजन करने का प्रयास करें। बालक को ऐसी क्रिया में लगाके रखें कि वे अपने समय का सदुपयोग करें तथा उनमें सीखने के साथ–साथ सृजनात्मक का भी विकास हो।

3. **किशोरावस्था : 12 से 18 वर्ष :– जीवन का सबसे कठिन काल** – किशोरावस्था को बड़े बल, तनाव, तूफान, संघर्ष माना जाता है। इसे संघर्ष तथा तनाव की अवस्था इसलिये कहा जाता है कि इस अवस्था में बालक/बालिकाओं में बड़े तेजी से शारीरिक/मानसिक परिवर्तन आते है जिनकी उन्हें पूर्व जानकारी नहीं होती है। इस कारण से उनमें तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। मानसिक तनाव इस कारण उत्पन्न होता है क्योंकि वे अपने आप को एक वयस्क के रूप में देखने लगते है, तथा परिवार में वयस्कों की तरह व्यवहार करते हैं जो समाज तथा परिवार में आमान्य हैं इसके कारण उनमें मानसिक तनाव उत्पन्न होता है। इस उम्र में वार्तालाप में रूचि, सामाजिक भावना का विकास संवेगात्मक विकास आदि का विकास पूर्ण रूप से हो जाता है।

इस काल में किशोरों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। शिक्षक अभिभावक तथा समाज को चाहिए कि वह ऐसी शिक्षा का आयोजन करे जिससे उनमें मानसिक तनाव उत्पन्न न हो तथा वे अपनी जिज्ञासाओं को शांत कर उचित तथा सही मार्ग की ओर अग्रसर हो। उनके अवकाश के समय को किसी सृजनात्मक क्रिया की ओर मोड़े जिससे आगे चलकर वे गलत रास्ते पर न जाकर सही दिशा का मार्ग पकड़े तथा समाज व राज्य की उन्नति में अपना योगदान दें, जिससे समाज में उन्हें एक सम्मानिय स्थान प्राप्त होगा। तथा उन्हें आत्म संतुष्टि की प्राप्ति होगी।

4. **युवावस्था : 19 से 35 :– भविष्य निर्माण का काल** – इस काल में बालक–बालक न रहकर युवा बन जाता है जो किसी भी समाज का भावी भविष्य होता है। इस काल में बालक बालिकाओं को अपने भविष्य को लेकर अधिक चिंता रहती है कि शिक्षा प्राप्त करने के बाद क्या किया जाये अपने भविष्य को लेकर उनमें चिंता का समावेश रहता है तथा अनुचित व्यवहार करने लगते हैं। कुछ युवा तो असमाजिक तत्वों में परिवर्तित हो जाते हैं जो समाज व शिक्षा के विकास के लिये हानिकारक होते हैं इस समस्या का सबसे बड़ा उपाय है। मार्गदर्शन सही दिशा में, सही मार्ग पर, सही समय पर उन्हे निर्देशन दिया जाए। यह कार्य करेगा 'लघु समाज' अर्थात विद्यालय एवं महाविद्यालय जिन्हें समाज का लघु स्वरूप तथा दर्पण कहते हैं जो समाज के युवाओं को सही मार्ग दिखाएंगे। इस श्रृंखला में युवाओं को व्यवसायिक व्यक्तिगत, शैक्षणिक निर्देशन दिए जाने चाहिए तथा सेमीनार, वर्कशॉप, नैतिक शिक्षा, प्रदर्शनी व स्वास्थ प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जाए जिससे उनमें सामाजिक गुणों का विकास हो तथा नए–नए तरीके, नई–नई चीजों को सीखकर अपने जीवन को सुगम व सरल बनाये।

5. **प्रौढ़ावस्था : 35 से 60 वर्ष :– उत्तरदायित्व निर्वाहन का काल** – यह अवस्था ऐसी अवस्था है जहां व्यक्ति व्यस्क अवस्था में प्रवेश करता है तथा

युवावस्था की समाप्ति पर प्रौढ़ावस्था का आगमन हो जाता है इस अवस्था में सीखने की प्रक्रिया निरंतर अपनी गति से चलती जाती है। इस आयु से पहले की अवस्थाओं में सीखने की गति अधिक तीव्र होती है। लेकिन इस अवस्था में सीखने की गति मंद नहीं पड़ती। मंद या तेज निर्भर करता है। जिज्ञासा पर यदि मानव में इस उम्र में आकर भी सीखने की जिज्ञासा होती है तो भी वह कठिन से कठिन कार्य सीख लेता है।

प्रौढ़ावस्था में मानव समाज अपने आसपास के माहौल, संगी–साथी आदि सभी से हर रोज एक नई चीज सीखता है तथा अपने व्यवहार में परिवर्तन करता है और अनुभवों से लाभ उठाकर समाज तथा स्वयं का विकास करता है।

6. **वृद्धावस्था : 60 से मत्यु पर्यन्त :– अनुभवो को बाटने का काल** – ''बूढ़े वारे एक समान'' अर्थात बूढ़े व वृद्धावस्था के व्यक्ति का व्यवहार, वारे (बालक) बालक के समान हो जाता है अर्थात जिज्ञासा अधिक होती है तथा अधिक से अधिक सीखने की ललक होती है।

यह समय सीखने का भी है और अपने अनुभवो को बांटने का है। अपने अनुभवो के द्वारा समाज के किशोरों, युवाओं और प्रौढ़ों को दिशा निर्देश देना भी आजीवन सीखना है। तथा यह सीखने सिखाने की प्रक्रिया सदैव आजीवन चलती है।

निष्कर्ष :– सीखने की प्रक्रिया का निष्कर्ष मात्र इतना होगा कि यह प्रक्रिया आजीवन चलती है जैसे शिक्षा की प्रक्रिया आजीवन चलती है उसी तरह सीखना भी जीवन पर्यन्त चलता है सामान्य रूप से देखा जाए तो हमारी दिनचर्या में एक भी मिनट ऐसा नहीं होता है जिससे हमने कुछ सीखा न हो। व्यक्ति के जन्म से लेकर जीवन के किसी भी काल मे मानव की सीखने की गति मंद नहीं होती है। वह हर समय, दिन, परिस्थिति में सीखता जाता है तथा अपने व्यवहार में परिवर्तन कर समाज तथा वातावरण के अनुरूप अपने को ढाल लेता है।

सीखने की प्रक्रिया निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है जैसे शिक्षा हमें हर समय किसी न किसी रूप में प्राप्त होती है ठीक उसी तरह सीखना भी किसी न किसी रूप में हमारे सामने आता है। सीखने की प्रक्रिया आजीवन प्रक्रिया है इसका सबसे बड़ा उदाहरण है बालक। एक बालक जन्म लेकर **शैशवास्था** में आया तो उसने अनुकरण करना सीखा तथा उसे प्रशिक्षण दिया गया। इसी तरह **बाल्यवस्था** में बालक ने रचनात्मक चिंतन करना सीखा व अपने रचनात्मक के आधार पर अपनी बुद्धि तथा कल्पना का विकास किया। **किशोर अवस्था** में बालक ने शारीरिक व मानसिक बदलावों को समझा व समायोजन सीखा तथा सही मार्ग पर चलना सीखा। **युवावस्था** व **प्रौढ़ावस्था** में व्यक्ति ने अपने कर्तव्य व उत्तरदायित्वों का निर्वाहन करना सीखा। **वृद्धावस्था** में अपने अनुभवों को कैसे समाज के लिये उपयोगी बनाया जाए यह सीखा।

अर्थात सीखने की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। अगर हम अपने रोज के जीवन में देखे तो अनेक ऐसे उदाहरण मिलेंगे जिससे सिद्ध होता है कि सीखने की कोई उम्र नहीं होती सीखना आजीवन चलने वाली एक प्रक्रिया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. शिक्षा मनोविज्ञान – अरूण कुमार सिंह – भारतीय भवन प्रकाशन।
2. शिक्षा मनोविज्ञान – पी.डी. पाठक।
3. बाल विकास – प्रो. एस.एल. कोठारी – शिक्षा साहित्य प्रकाशन।
4. शिक्षा मनोविज्ञान – डॉ. ओ.पी. सिंह।
5. अधिगम का मनोविज्ञान – डॉ. ए.बी. भटनागर – आर लाल बुक डिपो।
6. शिक्षा मनोविज्ञान – एस.के. मंगल।